दृष्टि The Vision

निबंध-दृष्टि

डॉ. विकास दिव्यकीर्ति
निशान्त जैन (आई.ए.एस.)

छठा संस्करण

2020 की IAS मुख्य परीक्षा तथा विगत वर्षों में पूछे गए निबंधों के हल सहित निबंध लेखन की तकनीक पर विस्तृत चर्चा और 125+ मॉडल निबंध

2000+ प्रभावशाली कथनों/कविताओं के संकलन के साथ

अब घर बैठे कीजिये
आई.ए.एस. की तैयारी
क्योंकि हम आ रहे हैं
आपके घर

हिंदी साहित्य

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

मोड : ऑनलाइन / पेन ड्राइव

IAS परीक्षा में सर्वाधिक अंकदायी वैकल्पिक विषय 'हिंदी साहित्य' पढ़िये सिविल सेवा जगत के सबसे लोकप्रिय शिक्षक डॉ. विकास दिव्यकीर्ति से। इस कोर्स में शामिल हैं 157 रोचक कक्षाएँ, जिनमें IAS का संपूर्ण पाठ्यक्रम एकदम आधारभूत स्तर से शुरू करते हुए पढ़ाया गया है। इन कक्षाओं को गंभीरता से करने और क्लास नोट्स (जो आपके पास भेजे जाएंगे) को पढ़ने के बाद आपको कुछ भी अतिरिक्त करने की आवश्यकता नहीं होगी। इन कक्षाओं से परीक्षा की तैयारी तो होगी ही, साथ ही जीवन के प्रति सुलझा हुआ नज़रिया भी विकसित होगा।

यह कोर्स ऑनलाइन मोड (ऐप) के अलावा पेन ड्राइव मोड में भी उपलब्ध है। यदि आप इंटरनेट नेटवर्क की कमी या किसी अन्य कारण से यह कोर्स मोबाइल फोन की बजाय लैपटॉप/कंप्यूटर पर करना चाहते हैं तो कृपया ऐप के होम पेज पर जाकर पेनड्राइव कोर्स की टैब पर क्लिक करें।

एडमिशन प्रारंभ

कक्षाओं की गुणवत्ता को परखने के लिये डेमो वीडियोज़ हमारे यूट्यूब चैनल Drishti IAS की प्लेलिस्ट Online Courses में देखें

ऑनलाइन कोर्स से जुड़ी हर जानकारी के लिये हमारी वेबसाइट www.drishtiias.com या Drishti Learning App पर FAQs पेज देखें

इस कोर्स से संबंधित किसी भी अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406440-41 नंबर पर सीधे बात या मैसेज करें

हिंदी साहित्य : कोर्स की विशेषताएँ

1. UPSC के पाठ्यक्रम के लिए 400+ घंटे की कक्षाएँ।
2. UPPCS एवं BPSC के विशिष्ट टॉपिक्स के लिये 30-30 घंटे की पृथक कक्षाएँ।
3. प्रत्येक कक्षा को 3 बार देखने की सुविधा, ताकि आप टॉपिक को पढ़ने के बाद रिवीज़न भी कर सकें।
4. हर क्लास में उस टॉपिक से IAS, PCS में पूछे गए और अन्य संभावित प्रश्नों का विस्तृत अभ्यास।
5. स्टेट-ऑफ-द-आर्ट कैमरा और साउंड क्वालिटी, जो क्लास के अनुभव को एकदम वास्तविक जैसा बनाती है।
6. पाठ्यक्रम की टेक्स्ट बुक्स व नोट्स भी इस कार्यक्रम में शामिल, जिनके अलावा किसी अन्य अध्ययन सामग्री की आवश्यकता नहीं।

अधिक जानकारी के लिये अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

Drishti Learning App

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली) :
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
☎ 87501 87501

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज) :
ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
☎ 87501 87501

दृष्टि The Vision

निबंध-दृष्टि

दृष्टि पब्लिकेशन्स
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाषः 011-47532596, 87501 87501
Website : www.drishtiias.com
E-mail : booksteam@groupdrishti.com

शीर्षक : *निबंध-दृष्टि*

छठा संस्करण : मार्च 2021

मूल्य : ₹ 380

ISBN : 978-81-950940-6-6

प्रकाशक

VDK Publications Pvt. Ltd.
(दृष्टि पब्लिकेशन्स)
641, प्रथम तल,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

✸ इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।

✸ हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।

✸ सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।

✸ **© कॉपीराइट :** दृष्टि पब्लिकेशन्स (A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

✸ एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

दो शब्द...

प्रिय पाठको,

आप जानते ही हैं कि सिविल सेवा मुख्य परीक्षा की सफलता में निबंध की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अगर आप पिछले वर्षों के सफल विद्यार्थियों तथा टॉपरों के अंक-पत्रों को देखेंगे तो उनमें यह समानता आपको लगभग अनिवार्य रूप से देखने को मिलेगी कि उनके निबंध के अंक अन्य प्रश्न-पत्रों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक थे; चाहे वे किसी भी माध्यम के उम्मीदवार हों। हिंदी माध्यम के उम्मीदवारों के लिये तो निबंध का प्रश्न-पत्र वरदान की तरह होता है क्योंकि इसमें उन्हें अंग्रेज़ी माध्यम की तुलना में नुकसान नहीं झेलना पड़ता। आप जानते ही हैं कि सामान्य अध्ययन में उच्च-स्तरीय पाठ्य-सामग्री, अद्यतनता, लिपि की गत्यात्मक संरचना तथा परीक्षकों की सहजता जैसे कारकों की वजह से अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यार्थी प्रायः हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों से 25–35 अंकों की बढ़त लिये रहते हैं। अंकों के इस अंतराल को हिंदी माध्यम के विद्यार्थी मुख्यतः निबंध के माध्यम से ही पाट सकते हैं।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा में निबंध की महती भूमिका को देखते हुए 'टीम दृष्टि' ने वर्ष 2012-13 में निबंध की एक ऐसी पुस्तक लिखने की योजना तैयार की थी जो हिंदी माध्यम के अभ्यर्थियों के लिये मील का पत्थर साबित हो सके और अकादमिक अध्येताओं की नचिकेताग्नि को भी संतुष्ट कर सके। हालाँकि यह एक जटिल कार्य था क्योंकि निबंधों के वैविध्य की कोई सीमा नहीं होती एवं कुछ मॉडल निबंधों के द्वारा विद्यार्थियों में निबंध लेखन के कौशल का विकास कर देना आसान नहीं था। इस चुनौती को अंजाम तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी ली मेरे प्रिय विद्यार्थी निशान्त जैन ने, जो 2014 की सिविल सेवा परीक्षा में हिंदी माध्यम के टॉपर भी रहे हैं। सिविल सेवा तथा राज्य लोक सेवा आयोगों की परीक्षाओं के पैटर्न को देखते हुए हमने करीब 675 विषय तैयार किये। फिर इसके बाद शुरू हुआ विषयों के अंतिम चयन का सिलसिला। एक-एक निबंध को सम्मिलित करने के पीछे हमने तार्किक आधार रखे। कुछ विषयों को लेकर मुझमें तथा निशान्त के विचारों में मतभेद भी रहे। फिर हमने वैज्ञानिक तरीके से आगामी परीक्षाओं में पूछे जा सकने वाले निबंधों की संभाव्यता को प्राथमिकता देते हुए कुल 300 विषयों पर सहमति बनाई। पुस्तक के अन्य कार्यों में मेरी व्यस्तता तथा निशान्त की आई.ए.एस. की ट्रेनिंग शुरू हो जाने के कारण हम दोनों के लिये पूरे तीन सौ निबंध लिख पाना व्यावहारिक नहीं था। इसलिये हम लोगों ने निबंध लेखन शैली को विकसित करने संबंधी लेख तथा कुछ महत्त्वपूर्ण सैंपल निबंध लिखने की योजना तय की।

शेष निबंधों को लिखने के लिये हमने दस अनुभवी एवं वरिष्ठ लेखकों की टीम तैयार की और उनके साथ निबंध की एप्रोच पर लंबी चर्चाएँ कीं। इस टीम ने पूरे मनोयोग से अपने अनुभवों को निचोड़ कर इस कार्य को मुकम्मल अंजाम तक पहुँचाया। इसके बाद हमने चार-चार वरिष्ठ लेखकों की पाँच टीमें तैयार कीं जिन्होंने इन निबंधों का कई स्तरों पर मूल्यांकन किया। मूल्यांकन के दौरान जिन भी निबंधों की गुणवत्ता पर ज़रा भी संदेह हुआ, उन्हें खारिज कर दिया गया। अंतिम चक्र में मैंने अपने स्तर पर सभी निबंधों का निर्णायक मूल्यांकन किया तथा करीब 125 मॉडल निबंधों को चुना। इस तरह, कई प्रकार की अग्नि परीक्षाओं से गुज़रने के बाद हमने इन निबंधों को पुस्तक में शामिल करने का निश्चय किया है। इसके बाद 'टीम दृष्टि' द्वारा सिविल सेवा (मुख्य) परीक्षा में पूछे जाने वाले निबंधों के मॉडल उत्तरों को इस पुस्तक में शामिल करने का निर्णय लिया और अब तक 2013-2020 तक सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए निबंध इस पुस्तक में शामिल किये जा चुके हैं।

पुस्तक से गुज़रते हुए आपको कुछ निबंध काफी बड़े आकार के मिलेंगे तो कुछ छोटे या मध्यम आकार के। आकार की यह विविधता अनायास नहीं है बल्कि यह हमारी योजना का एक हिस्सा था। हमने सामान्य निबंधों की शब्द-सीमा तो तय की थी, परंतु व्यापक पहलुओं को गर्भित करने वाले निबंधों को इस सीमा से मुक्त रखा था। हमारी कोशिश यह थी कि निबंध पढ़कर पाठकों को अधूरेपन का अहसास न हो; वे विषय के विविध पहलुओं से परिचित हो जाएँ ताकि निबंध से लेकर इंटरव्यू तक वे उन मुद्दों पर अपनी सुलझी हुई राय पेश कर सकें।

हम सभी इस बात पर एकमत थे कि निबंध में प्रयुक्त कविताएँ, कथन एवं अन्य उद्धरण परीक्षक पर विशेष प्रभाव डालते हैं तथा अंकों के इज़ाफे में बड़ा योगदान देते हैं। इसीलिये हमने विशेष रणनीति के तहत स्तरीय कविताओं एवं कथनों के प्रयोग के लिये लेखक समूह को निर्देश दिया था। लेखक समूह ने इस ज़िम्मेदारी को आशा से कहीं अधिक अच्छे तरीके से निभाया।

अब पुस्तक का पाँचवा व परिवर्द्धित संस्करण आपके हाथों में है। अब यह तो आप ही तय करेंगे कि पुस्तक आपकी अपेक्षाओं पर कितनी खरी उतरी, पर मुझे भरोसा है कि यह आपके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। **अगर आपको इसमें कोई भी कमी दिखे तो अपनी बात बेझिझक '8130392355' नंबर पर वाट्सएप मैसेज से भेज दें।** आपकी टिप्पणियों के आधार पर हम पुस्तक के आगामी संस्करणों को और बेहतर बना सकेंगे।

शुभकामनाओं सहित,

(विकास दिव्यकीर्ति)

अनुक्रम

खंड–1

निबंध लेखन : क्या, क्यों, कैसे? (डॉ. विकास दिव्यकीर्ति) **1–26**

(निबंध लेखन की तकनीक पर विस्तृत विवेचन तथा व्यावहारिक उदाहरण)

खंड–2

सिविल सेवा परीक्षा में निबंध : मेरी दृष्टि में (निशान्त जैन) **27–32**

निशान्त जैन द्वारा लिखित रणनीतिक विश्लेषण तथा कुछ मॉडल निबंध **33–56**

- पारम्परिक भारतीय परोपकारिता से गेट्स-बफेट मॉडल तक - एक सहज प्रगमन या एक रूपावली अंतरण।
- शिक्षा अपने अज्ञान की प्रगतिशील खोज है।
- न्याय का विचार अपने आदर्श की विकृत छाया मात्र है।
- अच्छी बाड़ें, अच्छे पड़ोसी बनाती हैं।
- सफल होना काफी नहीं है, जीवन की असली खोज सार्थकता की है।
- भारत के द्वन्द्व
- सफल व्यक्ति बनने का प्रयास मत करो, बल्कि मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध व्यक्ति बनो।
- एक साथ आधुनिकता और रूढ़िवादिता की ओर बढ़ रहा भारतीय समाज।
- पथ का अन्त कभी नहीं होता।

खंड–3

पिछले आठ वर्षों में सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए निबंध .... **57 – 195**

2020

- मनुष्य होने और मानव बनने के बीच का लंबा सफर ही जीवन है
- विचारपरक संकल्प स्वयं के शांतचित्त रहने का उत्प्रेरक है
- जहाज़ अपने चारों तरफ के पानी की वजह से नहीं डूबा करते, जहाज़ पानी के अंदर समा जाने की वजह से डूबते हैं
- सरलता चरम परिष्करण है
- जो हम हैं, वो संस्कार; जो हमारे पास है, वो सभ्यता
- बिना आर्थिक समृद्धि के सामाजिक न्याय नहीं हो सकता, किंतु बिना सामाजिक न्याय के आर्थिक समृद्धि निरर्थक है
- "पितृसत्ता की व्यवस्था नज़र में बहुत कम आने के बावजूद विषमता की सबसे प्रभावी संरचना है।"
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में मौन कारक के रूप में प्रौद्योगिकी

2019

- विवेक सत्य को खोज निकालता है
- मूल्य वे नहीं जो मानवता है, बल्कि वे हैं जैसा मानवता को होना चाहिये
- व्यक्ति के लिये जो सर्वश्रेष्ठ है, वह आवश्यक नहीं कि समाज के लिये भी हो
- स्वीकारोक्ति का साहस एवं सुधार करने की निष्ठा सफलता के दो मंत्र हैं
- दक्षिण एशियाई समाज सत्ता के आसपास नहीं, बल्कि अपनी अनेक संस्कृतियों और विभिन्न पहचानों के ताने-बाने से बने हैं
- प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा की उपेक्षा भारत के पिछड़ेपन के कारण हैं
- पक्षपातपूर्ण मीडिया भारत के लोकतंत्र के समक्ष एक वास्तविक खतरा है

- कृत्रिम बुद्धि का उत्थान: भविष्य में बेरोज़गारी का खतरा अथवा पुनर्कौशल और उच्चकौशल के माध्यम से बेहतर रोज़गार के सृजन का अवसर

2018

- जलवायु परिवर्तन के प्रति सुनम्य भारत हेतु वैकल्पिक तकनीकें
- एक अच्छा जीवन प्रेम से प्रेरित तथा ज्ञान से संचालित होता है
- कहीं पर भी गरीबी, हर जगह की समृद्धि के लिये खतरा है
- भारत के सीमा विवादों का प्रबंधन एक जटिल कार्य है
- रूढ़िगत नैतिकता, आधुनिक जीवन का मार्गदर्शक नहीं हो सकती है
- अतीत मानवीय चेतना तथा मूल्यों का स्थायी आयाम है
- जो समाज अपने सिद्धांतों के ऊपर अपने विशेषाधिकारों को महत्त्व देता है, वह दोनों से हाथ धो बैठता है
- यथार्थ आदर्श के अनुरूप नहीं होता, बल्कि उसकी पुष्टि करता है

2017

- भारत में अधिकतर कृषकों के लिये कृषि जीवन-निर्वाह का एक सक्षम स्रोत नहीं रही है।
- भारत में संघ और राज्यों के बीच राजकोषीय संबंधों पर नए आर्थिक उपायों का प्रभाव।
- राष्ट्र के भाग्य का स्वरूप निर्माण उसकी कक्षाओं में होता है।
- क्या गुटनिरपेक्ष आंदोलन (नाम) एक बहुध्रुवीय विश्व में अपनी प्रासंगिकता को खो बैठा है?
- हर्ष कृतज्ञता का सरलतम रूप है।
- भारत में 'नए युग की नारी' की परिपूर्णता एक मिथक है।
- हम मानवीय नियमों का तो साहसपूर्ण सामना कर सकते हैं, परंतु प्राकृतिक नियमों का प्रतिरोध नहीं कर सकते।
- सोशल मीडिया अंतर्निहित रूप से एक स्वार्थपरायण माध्यम है।

2016

- स्त्री-पुरुष के समान सरोकारों को शामिल किये बिना विकास संकटग्रस्त है।
- आवश्यकता लोभ की जननी है तथा लोभ का आधिक्य नस्लें बर्बाद करता है।
- संघीय भारत में राज्यों के बीच जल विवाद
- नवप्रवर्तन आर्थिक संवृद्धि और समाज कल्याण का अपरिहार्य कारक है
- सहकारी संघवाद : मिथक अथवा यथार्थ
- साइबर स्पेस और इंटरनेट : दीर्घ अवधि में मानव सभ्यता के लिये वरदान अथवा अभिशाप
- भारत में लगभग रोज़गारविहीन संवृद्धि : आर्थिक सुधार की विसंगति या परिणाम
- डिजिटल अर्थव्यवस्था : एक समताकारी या आर्थिक असमता का स्रोत

2015

- फुर्तीला, किंतु संतुलित व्यक्ति ही दौड़ में विजयी होता है।
- किसी संस्था का चरित्र चित्रण, उसके नेतृत्व में प्रतिबिम्बित होता है।
- मूल्यों से वंचित शिक्षा, जैसी अभी उपयोगी है, व्यक्ति को अधिक चतुर शैतान बनाने जैसी लगती है।
- प्रौद्योगिकी मानवशक्ति को विस्थापित नहीं कर सकती।
- भारत के सम्मुख संकट-नैतिक या आर्थिक।
- वे सपने जो भारत को सोने न दें।
- क्या पूंजीवाद द्वारा समावेशित विकास हो पाना संभव है?
- किसी को अनुदान देने से उसके काम में हाथ बँटाना बेहतर है।

2014

- क्या मानकीकृत परीक्षण शैक्षिक योग्यता या प्रगति का बढ़िया माप है?
- क्या प्रतिस्पर्द्धा का बढ़ता स्तर युवाओं के हित में है?
- ओलम्पिक में 50 स्वर्ण पदक : क्या भारत के लिये वास्तविकता हो सकती है?
- शब्द दो-धारी तलवार से अधिक तीक्ष्ण होते हैं।
- क्या यह नीति-गतिहीनता थी या कि क्रियान्वयन-गतिहीनता थी, जिसने हमारे देश की संवृद्धि को मंथर बना दिया था?
- पर्यटन : क्या भारत के लिये यह अगला बड़ा प्रेरक हो सकता है?

■ क्या स्टिंग ऑपरेशन निजता पर प्रहार है?
■ अधिकार (सत्ता) बढ़ने के साथ उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है।

2013

■ जो बदलाव आप दूसरों में देखना चाहते हैं पहले स्वयं में लाइये -गांधी जी।
■ सकल घरेलू उत्पाद के साथ-साथ सकल घरेलू खुशहाली देश की सम्पन्नता के मूल्यांकन के सही सूचकांक होंगे।
■ राष्ट्र के विकास व सुरक्षा के लिये विज्ञान व प्रौद्योगिकी सर्वोपचार है।
■ वेश्यावृत्ति को कानूनी तौर पर वैध बनाया जाए या नहीं।
■ क्या औपनिवेशिक मानसिकता भारत की सफलता में बाधक हो रही है?

खंड-4

अमूर्त विषयों पर आधारित निबंध.. 196 – 211

■ अच्छा-बुरा स्वयं में कुछ नहीं, हमारे विचार ही हमें अच्छा-बुरा बनाते हैं।
■ स्वतंत्र विचारण को बचपन से ही प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।
■ निरर्थक जीवन तो अकाल मृत्यु है।
■ सच्चे धर्म का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता।
■ काश यौवन जानता, काश बुढ़ापा सक्षम होता।
■ बचपन भूल है, यौवन संघर्ष तो बुढ़ापा पश्चाताप।
■ सत्य जिया जाता है, सिखाया नहीं जाता।
■ भूगोल यथावत बना रह सकता है; इतिहास के लिये यह आवश्यक नहीं है।

खंड-5

राजनीतिक और प्रशासनिक विषयों पर आधारित निबंध .... 212 – 252

■ अफस्पा: औचित्य एवं व्यवहार्यता।
■ हम 'धर्मनिरपेक्ष' हैं या 'पंथनिरपेक्ष'?
■ लोकतंत्र में सिविल सेवाओं की भूमिका : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ।
■ नक्सलवाद : एक विचारधारा या चुनौती?
■ आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक एवं नैतिक परिप्रेक्ष्य में मृत्युदंड के औचित्य पर उठते प्रश्न।
■ राष्ट्रवाद : एक मिथ्याचेतना या राष्ट्रप्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति?
■ क्या मृत्यु के वरण का अधिकार प्राकृतिक न्याय के विरूद्ध है?
■ क्या राज्यसभा लोकतांत्रिक जनादेश का प्रतिकार करती है?
■ आरक्षण, राजनीति एवं शक्ति सम्पन्नीकरण।
■ न्यायपालिका और मीडिया: क्या इनका ज़रूरत से ज़्यादा सक्रिय होना लोकतंत्र के लिये उचित होगा?
■ क्या हमारी न्याय व्यवस्था सिर्फ सामर्थ्यवान व्यक्तियों के लिये है?
■ भ्रष्टाचार: चुनौतियाँ एवं समाधान।
■ क्या पूर्वोत्तर भारत अब भी शेष भारत से कटा महसूस करता है?
■ लोक प्रशासन में पारदर्शिता की आवश्यकता।

खंड-6

आर्थिक विषयों पर आधारित निबंध .... 253 – 266

■ क्या राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा देगी?
■ देश के समावेशी विकास में कितना सफल है मनरेगा?
■ जनसांख्यिकीय लाभांश का समुचित लाभ उठाने के लिये कितना कारगर साबित होगा 'स्किल इंडिया'?

■ क्या हमारे परंपरागत हस्तशिल्पों की नियति में मंथर मृत्यु लिखी है?
■ क्या आलोचना कि विकास के लिये लोक-निजी साझेदारी (पी.पी.पी.) का मॉडल भारत के संदर्भ में वरदान से अधिक शाप है, औचित्यपूर्ण है?

खंड-7

पारिस्थितिकीय व भौगोलिक विषयों पर आधारित निबंध.......................... 267 – 290
■ क्या सृष्टि का विनाश लगातार बढ़ते प्रदूषण के कारण होगा?
■ शहर एक भूगोल ही नहीं, जीवन शैली और संस्कृति भी है।
■ क्या देश के जनजातीय क्षेत्रों में सभी नूतन खननों पर अधिस्थगन लागू किया जाना चाहिए?
■ प्रकृति हमारी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए है, लालचों को नहीं-गांधी जी।
■ ग्रीन इंडिया बनाम डिजिटल इंडिया : क्या हो विकास का सही पैमाना?
■ धारित आर्थिक विकास के लिये पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का परिरक्षण अत्यावश्यक है।
■ संसाधन प्रबंधन : भारत के संदर्भ में।
■ देश को बेहतर आपदा प्रबंधन की आवश्यकता।
■ नगरीकरण : एक प्रच्छन्न वरदान है।

खंड-8

अंतर्राष्ट्रीय व वैश्विक विषयों पर आधारित निबंध.................................. 291 – 304
■ एक आदर्श विश्व-व्यवस्था की मेरी कल्पना।
■ वर्तमान की वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ की पुनः संरचना।
■ नव-साम्राज्यवाद के मुखौटे।
■ 'वैश्वीकरण' बनाम 'राष्ट्रवाद'।
■ भारत के लिये भूमंडलीकरण के निहितार्थ और संस्कृति पर पड़ता उसका प्रभाव।

खंड-9

विज्ञान-तकनीक से जुड़े विषयों पर आधारित निबंध............................... 305 – 322
■ इंटरनेट पर 'निजता की सुरक्षा': एक बुनियादी चुनौती।
■ अंतरिक्ष क्षेत्र में भारत की असीम संभावनाएँ।
■ सौर ऊर्जा : भविष्य की ऊर्जा के रूप में।
■ एलियंस की अबूझ पहेली।
■ सोशल मीडिया का दुरुपयोग और आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियाँ।
■ क्या तकनीक हमारी रचनात्मकता खत्म कर रही है?
■ विज्ञान और रहस्यवाद : क्या वे संगत हैं?

खंड-10

सामाजिक/सांस्कृतिक विषयों पर आधारित निबंध .... 323 – 380
■ दलित विमर्श : दशा और दिशा।
■ क्या जाति आधारित जनगणना 'जातिमुक्त' भारत के सपने में बाधक है?
■ स्त्री विमर्श : दशा और दिशा।
■ बलात्कार : क्यों और कब तक?
■ महिला शक्तिसम्पन्नीकरण : चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ।
■ उभरती हुई नारी शक्ति : सही वस्तुस्थिति।
■ भारतीय फिल्मों में महिलाओं की स्थिति।

- धार्मिक अतिवाद की गिरफ्त में आता भारतीय युवा।
- धर्म और नैतिकता : सहयोगी या विरोधी?
- योग महज़ हिन्दू व्यायाम पद्धति नहीं बल्कि एक संपूर्ण जीवन शैली है।
- क्या वक्त आ गया है कि भारत में 'समान नागरिक संहिता' लागू हो?
- ट्रांसजेंडर समुदाय: सशक्तीकरण की ओर बढ़ते कदम।
- क्या भारतीय समाज में समलैंगिकता स्वीकार्य है?
- नस्लवाद: अतीत और वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में।
- क्या सामाजिक वंचन ही दिव्यांग-जनों की नियति है?
- भारत की समेकित संस्कृति।
- सहअस्तित्व की भावना के लिये बहुसंस्कृतिवाद आवश्यक है।
- वास्तविक शिक्षा क्या है?
- भारत में शिक्षा प्रणाली की पुन: संरचना।
- क्या सर्वसाधारण के शिक्षण द्वारा समतावादी समाज सम्भव है?
- स्वच्छ भारत का सपना जन जागरूकता से ही संभव है।

खंड–11

साहित्यिक विषयों से जुड़े निबंध .... 381 – 390

- साहित्य की ज़िम्मेदारी है कि वह दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो।
- निंदक नियरे राखिये।
- साहित्य में लोकमंगल की भावना का औचित्य एवं महत्त्व।
- साहित्य को शिक्षण का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिये।

खंड–12

महापुरुषों के व्यक्तित्व से जुड़े निबंध........ 391 – 413

- डॉ. अम्बेडकर: एक युगद्रष्टा एवं क्रांतिकारी समाज सुधारक।
- नए भारत के लिये तुलसी का पुनर्पाठ।
- बुद्ध के विचारों की उत्तरजीविता अनंत है।
- टैगोर के विचारों की भावभूमि वैश्विक प्रकृति की है।
- विवेकानन्द का दर्शन और भारतीय समाज।
- गांधी: भारतीय सभ्यता के अग्रदूत।
- महावीर के विचार आज कितने प्रासंगिक हैं?
- एकात्म मानववाद: एक परिपूर्ण भारतीयता का दर्शन!

खंड–13

निबंध के लिये उपयोगी उद्धरण .... 414 – 464

- खंड-क : विषय आधारित उद्धरण
- खंड-ख : विचारक आधारित उद्धरण
- खंड-ग : संस्कृत उद्धरण
- खंड-घ : अंग्रेज़ी उद्धरण

खंड–1

निबंध लेखन की तकनीक पर विस्तृत विवेचन तथा व्यावहारिक उदाहरण

निबंध लेखन : क्या, क्यों, कैसे?

– डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

निबंध लिखना विद्यार्थी जीवन की सबसे कठिन चुनौतियों में से एक है। पढ़ाई चाहे विद्यालय स्तर की हो, कॉलेज के स्तर की या प्रतियोगी परीक्षाओं के स्तर की, निबंध लेखन की चुनौती विद्यार्थियों के सामने बनी ही रहती है। कई विद्यार्थियों के मन में यह सहज सवाल उठता है कि आखिर उनसे निबंध क्यों लिखवाया जाता है? निबंध को पढ़कर कोई उनके मानसिक स्तर या व्यक्तित्व का मूल्यांकन कैसे कर सकता है? और अगर कर सकता है, तो उन्हें एक बेहतरीन निबंध कैसे लिखना चाहिये?

इस लेख के माध्यम से हम ऐसे ही कुछ प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश करेंगे। विश्वास रखिये कि निबंध लेखन की कला कोई जन्मजात कला नहीं है, इसे कठोर अभ्यास से निश्चित तौर पर साधा जा सकता है। अगर आप भी ठान लेंगे कि आपको प्रभावशाली निबंध-लेखक बनना है तो एक-दो महीनों के निरंतर और रणनीतिक अभ्यास से आप निश्चय ही इस सपने को साकार कर लेंगे।

निबंध क्या है?

सबसे पहले हम यही समझने की कोशिश करते हैं कि एक विधा (Genre) के रूप में निबंध क्या है और यह अन्य विधाओं से कैसे अलग है? 'विधा' (Genre) शब्द शायद आपको नया लग रहा होगा। इसका अर्थ साहित्य, संगीत या कला की विशेष शैलियों से होता है। उदाहरण के लिये, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, लेख और समीक्षा विभिन्न विधाओं के उदाहरण हैं। किसी विधा में उतरने से पहले बेहतर होता है कि उसके चरित्र को ठीक से समझ लिया जाए। मुझे विश्वास है कि अगर आपको निबंध विधा की ठीक समझ होगी तो निबंध लेखन की प्रक्रिया में आप अपना सतत् मूल्यांकन भी कर सकेंगे और प्रभावशाली निबंध भी लिख सकेंगे।

कुछ लोग मानते हैं कि निबंध एक प्राचीन भारतीय विधा है जिसका मूल संस्कृत साहित्य में खोजा जा सकता है। यह बात सही है कि संस्कृत में 'निबंध' नाम की एक विधा मौजूद थी जिसमें धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों की विवेचना की जाती थी। इस विधा में लेखक पहले अपने से विरोधी सिद्धांतों को चुनौती के तौर पर पेश करता था और फिर एक-एक करके अपने तर्कों, प्रमाणों की मदद से उन सभी सिद्धांतों को ध्वस्त करता था। चूँकि इस विधा में प्रमाणों का 'निबंधन' किया जाता था, इसीलिये इसका नाम 'निबंध' पड़ गया था।

सवाल यह है कि आज हम जिसे निबंध कहते हैं, वह यही विधा है या उससे अलग? इसका सामान्यत: प्रचलित उत्तर है कि आज का निबंध अपने चरित्र और स्वरूप में संस्कृत के 'निबंध' पर नहीं बल्कि अंग्रेज़ी के 'Essay' पर आधारित है। अत: निबंध विधा को समझने के लिये हमें आधुनिक यूरोपीय साहित्य की पृष्ठभूमि का अनुसंधान करना चाहिये।

माना जाता है कि एक आधुनिक विधा के रूप में 'निबंध' की शुरुआत 1580 ई. में फ्राँस के लेखक मॉन्तेन (Montaigne) के हाथों हुई। मॉन्तेन ने अपने निबंधों के लिये 'ऐसे' (Essay) शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ होता है- 'प्रयोग'। उस समय फ्राँस में कहानी, नाटक, कविता जैसी कई विधाएँ प्रचलित थीं पर निबंध का कलेवर उन सबसे अलग था। इसमें कहानियों की तरह न तो विभिन्न चरित्र/पात्र थे और न ही घटनाएँ थीं। नाटक में कहानी के साथ-साथ दृश्य और मंच की भी बड़ी भूमिका होती है, पर निबंध में यह सब भी नहीं था। अगर कविताओं से तुलना करें तो उनमें छंद, तुक और लय जैसे ढाँचे उपस्थित होते हैं जो रचनाकार को एक बुनियादी फ्रेमवर्क उपलब्ध करा देते हैं; पर निबंध में ये भी नहीं थे क्योंकि निबंध पद्य (Poetry) में नहीं, गद्य (Prose) में था।

स्पष्ट है कि निबंध इन सभी विधाओं से अलग था। एक अर्थ में यह सबसे कठिन विधा के रूप में उभरा क्योंकि इसमें पाठक को बांधकर रखना सबसे मुश्किल काम था। यह मुश्किल इसलिये था क्योंकि इसमें मनोरंजन पैदा करने के लिये न घटनाएँ

थीं और न ही कहानियाँ। इसमें सिर्फ 'विचार' या 'भाव' थे जो बिना किसी ओट या माध्यम के सीधे ही व्यक्त होने थे। अगर निबंध-लेखक के पास सूक्ष्म विचार-क्षमता और सीधे दिल तक पहुँचने वाली भाषा हो तो ही वह अपने पाठक को चमत्कृत कर सकता था। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में निबंध लेखन के बादशाह कहे जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा भी है कि *"यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।"* कहने का भाव यही है कि कविता लिखने की तुलना में गद्य लिखना कठिन होता है क्योंकि गद्य के लेखक के पास तुक और लय के बने-बनाए खाँचे मौजूद नहीं होते; और गद्य की विभिन्न विधाओं में आपसी तुलना करें तो कहानी, उपन्यास और नाटक की तुलना में निबंध लिखना सबसे कठिन है क्योंकि निबंध में बाकी तीनों विधाओं की तरह चरित्रों, घटनाओं और कल्पनाओं की खुली छूट नहीं होती। निबंध का लेखक तो बिना किसी परदे, ओट या ढाल के सीधे पाठक के सामने उपस्थित होता है और हर क्षण यह खतरा झेलता है कि कहीं पाठक ऊबकर पन्ना न पलट दे।

अभी तक की चर्चा से आपको निबंध विधा के बारे में कुछ-कुछ अनुमान तो लग गया होगा पर अभी भी उसकी मुकम्मल तस्वीर नहीं बनी होगी। इसकी एक वजह यह भी है कि निबंध की कोई निश्चित परिभाषा है ही नहीं। जैसे-जैसे निबंध-लेखन परंपरा का विकास हुआ, निबंधकारों ने अपने-अपने तरीके से इस विधा में नए प्रयोग किये। हर नए प्रयोग के साथ यह विवाद उठा कि इसे निबंध विधा के अंतर्गत शामिल किया जाए या नहीं? इसी वाद-विवाद के माध्यम से निबंध के नए-नए प्रकार बनते गए और निबंध की एक निश्चित परिभाषा देना मुश्किल होता गया।

उदाहरण के लिये, मॉन्तेन के रास्ते पर चलते हुए एडीसन और डॉ. सैमुअल जॉनसन जैसे पश्चिमी निबंधकारों ने निबंध को एक भावपरक, कल्पनाप्रधान, अनियंत्रित, उच्छृंखल तथा मनमौजी रचना के रूप में परिभाषित किया और उसमें विचार, तर्क, विश्लेषण जैसे तत्त्वों को खास महत्त्व नहीं दिया। डॉ. सैमुअल जॉनसन ने निबंध की जो परिभाषा दी, वह इस नज़रिये को व्यक्त करने वाली प्रतिनिधि परिभाषा बन गई। उन्होंने कहा कि *"निबंध मन की मुक्त मौज, अनियमित व अपरिपक्व सी रचना, एक ऐसी कृति है जो न तो नियमबद्ध है और न ही व्यवस्थित" ('An Essay is a loose sally of mind; an irregular undigested piece, not a regular and orderly composition')*। मॉन्तेन ने भी लगभग ऐसी ही परिभाषा देते हुए निबंध को *"मनमौजी उक्तियों व अभिव्यक्तियों की मौज"* बताया है। अंग्रेज़ी और हिंदी में कई ऐसे लेखक हुए हैं जो इसी परिभाषा को प्रमाणित करते हुए निबंध लिखते रहे। ऐसे निबंधों को हिंदी में प्रायः ललित निबंध कहे जाने की परंपरा रही है। प्रतापनारायण मिश्र और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के कई निबंध इस परंपरा में मील के पत्थर माने जाते हैं। ऐसा नहीं कि इन निबंधों में विचार पक्ष होता ही नहीं; वह होता है किंतु कल्पनाओं और भावनाओं की तुलना में दबा हुआ सा रहता है।

दूसरी तरफ, अंग्रेज़ी तथा हिंदी दोनों भाषाओं में कुछ ऐसे लेखक भी हुए हैं जिन्होंने निबंध को एक गंभीर, चिंतनपरक, विश्लेषणात्मक तथा विचारप्रधान रचना के रूप में स्वीकार किया है। पश्चिम की बात करें तो मॉन्तेन के पहले निबंध के 17 वर्ष बाद 1597 ई. में उनके समकालीन लेखक फ्रांसिस बेकन ने अंग्रेज़ी में ऐसे निबंधों की परंपरा शुरू की। उन्होंने बौद्धिकता से भरी रचनाएँ लिखीं और उन्हें 'निबंध' (Essay) नाम दिया। धीरे-धीरे मान लिया गया कि बेकन की गंभीर, विचारप्रधान रचनाएँ भी निबंधों की ही एक नई शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसा होते ही बेकन भी (मॉन्तेन के साथ) निबंध के प्रवर्तक माने जाने लगे। इस प्रकार, 16वीं सदी के अंत में ही निबंध की दो शैलियाँ प्रचलित हो गईं- पहली, मनमौजी निबंधों की शैली; और दूसरी, गंभीर निबंधों की शैली।

बेकन के प्रयोगों का ही परिणाम था कि निबंध शब्द का अर्थ-विस्तार होने लगा। आगे चलकर, कई क्षेत्रों के महान लेखकों ने अपनी-अपनी रचनाओं को 'निबंध' के तौर पर प्रस्तुत किया। उदाहरण के लिये, थॉमस माल्थस ने *'जनसंख्या के सिद्धांत पर एक निबंध' ('An essay on the principle of population')* लिखा तो जॉन लॉक ने *'मानवीय समझ पर निबंध' ('An essay concerning human understanding')* लिखकर निबंध विधा को दर्शन की बारीकियों से जोड़ दिया। यहाँ तक कि बर्नार्ड शॉ ने जो भूमिकाएँ लिखीं, वे भी निबंध की श्रेणी में शामिल मानी गईं और बर्ट्रेण्ड रसेल के सूक्ष्म वैचारिक साहित्य को भी निबंध ही कहा गया।

हिंदी साहित्य में भी शुरू से निबंध की ये दोनों शैलियाँ प्रचलित रही हैं। अगर प्रतापनारायण मिश्र और हज़ारी प्रसाद द्विवेदी मनमौजी शैली में ज़्यादा रमे हैं तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमचंद, डॉ. नामवर सिंह और राजेन्द्र यादव जैसे लेखक गंभीर, विचारप्रधान निबंधों के रास्ते पर चले हैं। इस तरह के निबंधों (गंभीर, विचारप्रधान निबंधों) में प्रायः एक समस्या केंद्र में होती है और लेखक बहुत तार्किक ढंग से उस समस्या के सभी आयामों को खोलता हुआ चलता है। ज़रूरत पड़ने पर वह थोड़ी बहुत कल्पनाएँ भी करता है, किसी-किसी बिंदु पर पाठक की भावुकता को भी कुरेदता है, अपनी ज़िंदगी के उदाहरण भी देता है; पर कुल मिलाकर, विचार और विश्लेषण पक्ष की प्रधानता पूरे निबंध में बनी रहती है।

खंड–2

निशान्त जैन द्वारा लिखित रणनीतिक विश्लेषण तथा कुछ मॉडल निबंध

सिविल सेवा परीक्षा में निबंध : मेरी दृष्टि में

[इस भूमिका तथा निबंधों में व्यक्त विचार पूर्णतया लेखक के निजी विचार हैं। ये निबंध लेखक द्वारा तैयारी के दौरान प्रतियोगी परीक्षाओं के अभ्यर्थियों हेतु नमूने के तौर पर लिखे गए हैं।]

सिविल सेवा परीक्षा में निबंध के प्रश्नपत्र की प्रासंगिकता और महत्त्व के संबंध में किसी को कोई संदेह नहीं है। दरअसल निबंध का यह 250 अंकों का प्रश्नपत्र मुख्य परीक्षा के नवीनतम पैटर्न में सफलता की एक बड़ी अनिवार्यता बनकर उभरा है। सिविल सेवा परीक्षा 2014 की टॉपर इरा सिंघल और मुझे, दोनों को ही निबंध में 160 अंक प्राप्त हुए हैं, जो अभी तक प्राप्त अधिकतम जानकारी के मुताबिक सर्वाधिक अंक हैं। सुखद तथ्य यह है कि मेरे द्वारा हिन्दी माध्यम में लिखे गए निबंधों को भी सुश्री इरा सिंघल के अंग्रेज़ी माध्यम में लिखे गए निबंधों के बराबर अंक प्राप्त हुए। इससे अनिवार्य तौर पर तो नहीं, पर सामान्य तौर पर यह ज़रूर माना जा सकता है कि निबंध के प्रश्नपत्र में भाषा कोई समस्या नहीं है और यदि बेहतर और सटीक रणनीति बनाकर अच्छे निबंध लिखे जाएँ तो श्रेष्ठ अंक हासिल किये जा सकते हैं।

प्रथमदृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि निबंध उन सात प्रश्नपत्रों की तरह ही 250 अंकों का एक प्रश्नपत्र है, जिसके अंक मुख्य परीक्षा के कुल स्कोर (1750 अंक) में जोड़े जाते हैं; पर बारीकी से समझने पर यह बात सामने आती है कि निबंध का प्रश्नपत्र इसमें प्राप्त होने वाले अंकों के लिहाज़ से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। निबंध के प्रश्नपत्र में मिले गत वर्षों के अंक यह बताते हैं कि निबंध में प्राप्तांकों की रेंज बहुत व्यापक है। इसका अर्थ है कि एक ओर जहाँ यह प्रश्नपत्र 50 या उससे भी कम अंकों का स्कोर दे देता है, वहीं दूसरी ओर कुछ लोग इसमें 150 या उससे अधिक अंक भी प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह यह 100 अंकों का गैप न केवल आपकी रैंक को प्रभावित करता है बल्कि अंतिम रूप से आपके चयन में भी निर्णायक हो जाता है।

अत्यधिक महत्त्व और बढ़ती प्रासंगिकता के बावजूद एक दिलचस्प पहलू यह भी है कि संघ लोक सेवा आयोग की प्रतिष्ठित 'सिविल सेवा परीक्षा' में यह अभ्यर्थियों द्वारा सर्वाधिक उपेक्षित-सा प्रश्नपत्र है, जिसकी तैयारी से लेकर इसमें प्रदर्शन तक, प्रतियोगी मित्र एक निश्चिंतता या उपेक्षा के भाव से इसे डील करते हैं। कई अभ्यर्थी तो अपनी तैयारी की पूरी अवधि के दौरान पहला निबंध सीधे मुख्य परीक्षा के केंद्र पर जाकर ही लिखते हैं। कई अभ्यर्थियों का यह भी मानना है कि चूँकि यह प्रश्नपत्र अत्यधिक आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव) प्रकृति का है और इसकी तैयारी का कोई स्पष्ट फॉर्मूला नहीं है, अत: इसकी तैयारी में समय देने का कोई लाभ ही नहीं है। मेरी समझ में निबंध के प्रश्नपत्र की यह घोर उपेक्षा अविवेकपूर्ण और कदाचित् आत्मघाती है। यदि मैं अपनी रणनीति और तैयारी की समग्र प्रक्रिया के संदर्भ में बात करूँ, तो यह सत्य है कि मेरी रणनीति में निबंध का अति महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और मैं इसकी तैयारी को प्राथमिकता पर रखता रहा हूँ। सौभाग्य से उसका सुफल मुझे प्राप्त भी हुआ और मेरी श्रेष्ठ रैंक में इस प्रश्नपत्र ने बेहद प्रभावी भूमिका भी निभाई है।

यद्यपि निबंध एक आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव) प्रकृति का प्रश्नपत्र है और इसकी तैयारी करने का कोई रटा-रटाया फॉर्मूला नहीं हो सकता। साथ ही, इसके प्राप्तांकों को लेकर कोई सटीक भविष्यवाणी कर पाना भी उचित नहीं है; फिर भी कुछ ऐसी प्रविधियाँ, तकनीकें और तथ्य ज़रूर हो सकते हैं, जो निबंध के प्रश्नपत्र में न केवल बेहतर प्रदर्शन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, बल्कि मेरी समझ में कम-से-कम यह तो सुनिश्चित कर ही सकते हैं कि एक अभ्यर्थी को औसत से बेहतर अंक प्राप्त हों। यह मेरा विश्वास है कि निबंध की समुचित तैयारी और सटीक रणनीति से इस अति महत्त्वपूर्ण प्रश्नपत्र में बेहतर और उत्कृष्ट प्रदर्शन किया जा सकता है। इस लेख के माध्यम से मेरा प्रयास है कि मैं इस निबंध के प्रश्नपत्र में श्रेष्ठ प्रदर्शन के लिये कुछ कारगर उपायों, और रणनीति पर चर्चा कर इसे अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ और सरल बनाने की कोशिश करूँ।

इस लेख के माध्यम से मैं सबसे पहले निबंध के प्रश्नपत्र से जुड़े सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करते हुए इस प्रश्नपत्र से जुड़ी विविध उलझनों के निराकरण की कोशिश करूंगा। सबसे पहले समझें कि संघ लोक सेवा आयोग की इस प्रश्नपत्र में

(i) पढ़ने और गुनने की आदत हमेशा विचारों को परिपक्व बनाकर सोच का दायरा बढ़ाती है। भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है–

"कुछ लिख के सो, कुछ पढ़ के सो,
तू जिस जगह जागा सवेरे
उस जगह से बढ़ के सो।"

अत: पढ़ने-लिखने, चर्चा करने और मनन (गुनने) की आदत बनाए रखें और इसे विकसित करते रहें। वैसे इस पुस्तक में प्रस्तुत निबंध स्वयं में भरपूर सामग्री उपलब्ध करा सकते हैं, पर फिर भी ज्ञान के स्रोत को सीमित न करें, अच्छी किताबें/पत्रिकाएँ पढ़ते रहें और हमेशा सीखने की कोशिश करें।

(ii) लेखन अभ्यास का कोई विकल्प नहीं है। हर सप्ताह निबंध लिखने का अभ्यास ज़रूर करें और कोशिश करें कि उसका मूल्यांकन करा लें, ताकि तद्नुरूप और सुधार किया जा सके।

(iii) समूह चर्चा (Group Discussion) तैयारी का एक गतिशील और सहभागितापूर्ण तरीका है। साथ ही चर्चा करने से विचार उर्वर और स्थायी हो जाते हैं। उपनिषद् में कहा गया है–

'वादे वादे जायते तत्त्वबोधा:।'
(वाद-विवाद से ही तत्त्वबोध होता है)

(iv) ज्ञान अथाह और अनंत है। हमने इस महासागर की सिर्फ कुछ बूंदें ही चखी हैं। अत: *'अधजल गगरी छलकत जाय'* अथवा *'थोथा चना, बाजे घना'* वाली प्रवृत्ति से दूर रहें और हमेशा अपने अहं (Ego) को सीखने की प्रक्रिया में आड़े न आने दें। सुकरात ने कहा था, *"मैं ज्ञानी इस अर्थ में हूँ कि मैं यह जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता।"*

(v) अति-आत्मविश्वास (Over confidence) से बचें पर अपनी तैयारी और धारणा (Conviction) पर भरपूर विश्वास बनाए रखें। जब आप निरंतर अभ्यास करते रहेंगे और तद्नुरूप सुधार भी करेंगे, तो यह लगभग तय मानिये कि आप एक बेहतर निबंध लिख पाएंगे।

(vi) समय विभाजन का भी ध्यान रखें। अनिवार्य तौर पर दोनों (या जो प्रश्नपत्र में निर्देशित किया गया हो) निबंध लिखें और उन्हें लगभग बराबर समय दें। पहले निबंध को यदि 5-10 मिनट अधिक दे दिये जाएँ, तो कोई बड़ी समस्या नहीं है। कोशिश करें कि प्रश्नपत्र के क्रम में निबंध लिखें।

(vii) शब्द सीमा का उल्लंघन न करें। अधिक लिखकर कोई श्रेय प्राप्त नहीं होगा।

(viii) अंत में, सकारात्मक ऊर्जा बनाए रखें। किसी भी कीमत पर हार न मानें। न तैयारी के दौरान और न ही परीक्षा कक्ष में। मेरी कविता 'सकारात्मक सोच' आपके लिये–

"सकारात्मक सोच संग उत्साह और उल्लास लिये,
जीतेंगे हर हारी बाज़ी, मन में यह विश्वास लिये।
ऊहापोह-अटकलें-उलझनें, अवसादों का कर अवसान,
हो बाधाएँ कितनी पथ में, चेहरों पर बस हो मुस्कान।
अंतर्मन में भरी हो ऊर्जा, नई शक्ति का हो संचार,
डटकर चुनौतियों से लड़कर, जीतेंगे सारा संसार।
ले संकल्प सृजन का मन में, उम्मीदों से हो भरपूर,
धुन के पक्के उस राही से, मंज़िल है फिर कितनी दूर।
जगे ज्ञान और प्रेम धरा पर, गूंजे कुछ ऐसा संदेश,
नई चेतना से जागृत हो, सुप्त पड़ा यह मेरा देश।"

1 पारम्परिक भारतीय परोपकारिता से गेट्स-बफेट मॉडल तक – एक सहज प्रगमन या एक रूपावली अंतरण।

"तुम्हारे दिल की चुभन भी ज़रूर कम होगी,
किसी के पाँव से काँटा निकालकर देखो।"

अज़ीम शायर डॉ. कुँवर बेचैन की ये पंक्तियाँ खुद से परे समाज के प्रति अपने सरोकारों को समझने में मदद करती हैं और परोपकारिता की अवधारणा की एक बानगी प्रस्तुत कर प्रेरणा प्रदान करती हैं। पर हमें यहाँ यह भी समझना होगा कि परोपकारिता है क्या, इसका स्वरूप क्या है, इसके लक्षण कौन-कौन से हैं? इस अवधारणा की वस्तुत: प्रासंगिकता क्या है? प्राचीन काल से लेकर अधुनातन वैज्ञानिक युग तक इसका विकास किस प्रकार हुआ? इसका वर्तमान स्वरूप क्या है? और क्या यह अपने वर्तमान वैश्विक स्वरूप तक किसी सहज प्रगमन द्वारा पहुँची है अथवा किसी आकस्मिक रूपावली अंतरण के माध्यम से।

परोपकारिता दरअसल किसी देश या काल अथवा समय की सीमाओं से परे एक व्यापक और वैश्विक अवधारणा है। आध्यात्मिक जगत से लेकर भौतिक संसार में, सामाजिक-आर्थिक- राजनीतिक-दार्शनिक-सांस्कृतिक-वैज्ञानिक सभी क्षेत्रों में, ग्रामीण व नगरीय परिप्रेक्ष्य में, वैयक्तिक व सामूहिक स्तर पर 'परोपकार' का दायरा पर्याप्त विस्तृत है। 'परोपकार' शब्द दो शब्दों- 'पर'+'उपकार' से मिलकर बना है। 'पर' अर्थात् अन्य और 'उपकार' यानी सहायता- सहयोग। परोपकार का शाब्दिक अर्थ है– 'दूसरों की सहायता करना।' व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो परोपकारिता के फलक का विस्तार अपने मित्र, बन्धु-बान्धव, परिचित-पड़ोसी, अपने शहर व प्रांत के लोग, देश से लेकर संसार के मनुष्यों तक और उससे भी आगे पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और पर्यावरण के घटकों तक हो सकता है।

यदि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में देखें तो प्रचुर प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न राष्ट्र का वंचित राष्ट्र को धान्य आपूर्ति करना, तकनीकी रूप से पिछड़े देश को तकनीकी व वैज्ञानिक समर्थन उपलब्ध कराना, प्राकृतिक व मानव-जन्य आपदा की स्थिति में विभिन्न शक्तिशाली राष्ट्रों के मध्य सहायता हेतु होड़ मचना आदि परोपकारिता के ही उदाहरण हैं। राष्ट्रीय स्तर पर केदारनाथ त्रासदी जैसे संकट के क्षणों में प्रधानमंत्री राहत कोष में भरपूर दान प्राप्त होना, दुर्गम व पहाड़ी राज्यों को विशेष राज्य का दर्जा देकर उन्हें अतिरिक्त केंद्रीय अनुदान, सामाजिक-शैक्षिक रूप से पिछड़े व वंचित वर्गों- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक, जनजातीय समुदाय, दुर्गम क्षेत्रों के निवासी, महिलाएँ, विकलांगजन, ग्रामीण, 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों आदि के प्रति संवेदनशीलता विकसित कर, आवास योजनाएँ, पन्द्रह सूत्रीय कार्यक्रम, सबला, सक्षम, मनरेगा, मध्याह्न भोजन, पेंशन, छात्रवृत्ति जैसी लोक कल्याणकारी योजनाएँ चलाना; सामाजिक स्तर पर विविध गैर-सरकारी संगठनों द्वारा सुदूर क्षेत्रों में विकास व जागरूकता बढ़ाने के कार्यक्रम चलाना, नि:शुल्क औषधालय, विद्यालय, अनाथालय, वृद्धाश्रम, संरक्षण गृह, भोजनालय, भंडारे आदि चलाना; आर्थिक स्तर पर मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति, ज़रूरतमंदों की आर्थिक सहायता, आध्यात्मिक व दार्शनिक स्तर पर साधना द्वारा अनुभूत ज्ञान, बोधि व ध्यान की तकनीकों का जन-जन में प्रचार, आत्मविकास के साथ-साथ सबका विकास, धार्मिक अधिकारों तक सभी वर्गों की समान पहुँच, सांस्कृतिक स्तर पर सबको जोड़कर चलने की संस्कृति विकसित करना, 'हम सबके-सब हमारे' का भाव जागृत करना, वैज्ञानिक व तकनीकी स्तर पर अंधश्रद्धा निर्मूलन हेतु डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर की भाँति भागीरथ प्रयास करना, वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास हेतु कार्य करना आदि तमाम कार्य 'परोपकारिता' की व्यापक अवधारणा में समाविष्ट हो जाते हैं।

जहाँ तक पारंपरिक भारतीय परोपकारिता का संदर्भ है, तो यह सर्वविदित ही है कि परोपकारिता की भारतीय परंपरा बेहद प्राचीन, सतत व समावेशी रही है। प्राचीन भारतीय मिथक हों या पुराण-कथाएँ, बौद्ध-जैन ग्रंथ हों या सूफी किताबें, नानक की गुरुबानी हो या कबीर के दोहे; भारतीय साहित्य व संस्कृति में परोपकारिता के आदर्शों व उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। महर्षि व्यास के *'अष्टादश पुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीडनम्।।'* के संदेश से लेकर तीर्थंकर महावीर के *'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'* के आह्वान तक तथा बुद्ध के संदेश *'बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय'* से लेकर गुरु नानक के संदेश *'नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत दा भला'* तक, पारंपरिक भारतीय परोपकारिता का एक नैरन्तर्यपूर्ण विकासमान स्वरूप उभरकर सामने आता है।

यह भारतीय परोपकारिता की परंपरा का ही उदात्त रूप है कि यहाँ राजा शिवि एक पक्षी को बचाने के लिये अपने शरीर के अंग का त्याग कर देते हैं, तो दूसरी ओर महर्षि दधीचि मानवता व प्रकृति की रक्षा के लिये अपनी तेजोमयी अस्थियों का दान

"तलाक दे तो रहे हो, जुनून-ओ-कहर के साथ,
मेरा शबाब भी लौटा दो, मेरी मेहर के साथ।"

अभी भी देश के अलग-अलग कोनों से दलित उत्पीड़न, साम्प्रदायिक दंगे, बच्चों का उत्पीड़न, विकलांगों से उपेक्षापूर्ण व्यवहार के समाचार आते रहते हैं। इस तरह संविधान के मूल कर्त्तव्यों व राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में वर्णित सामाजिक न्याय का आदर्श एक धुंधली छाया के रूप में यथार्थ में परिणत होता है।

राजनीतिक न्याय का आदर्श भी अपने मूल उद्देश्यों के अनुरूप कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका है। सबके साथ बराबरी, सबको मतदान व चुनाव लड़ने की स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनाव, उम्मीदवारों की सुरक्षा, अनुचित चुनावी हथकंडों व तौर-तरीकों से मुक्ति जैसे कारक राजनीतिक न्याय की सफलता के लिये ज़रूरी हैं।

इसी तरह आर्थिक न्याय का आदर्श भी अभी तक अधूरा ही है। *'हर हाथ को काम, हर पेट को रोटी'* का सपना अभी भी सपना ही है। हालाँकि सरकार द्वारा मनरेगा, खाद्य सुरक्षा और जन-धन जैसी विशाल कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से देश में आर्थिक न्याय लाने की पुरज़ोर कोशिश की जा रही है, पर अभी भी 'गरीबी हटाओ' जैसे नारे उतनी ही शिद्दत से प्रासंगिक हैं। सभी को उन्नति का समान अवसर अभी तक मुहैया नहीं कराया जा सका है क्योंकि शिक्षा का अधिकार मिलने के बावजूद अभी जनसंख्या के बड़े वर्ग की शैक्षिक व स्वास्थ्य संबंधी दशा खस्ताहाल है।

आज का भारत आदर्श और यथार्थ के एक दोराहे पर खड़ा मालूम होता है। आदर्श में न्याय और यथार्थ में न्याय कभी-कभी दो विपरीत ध्रुवों की तरह लगते हैं। इसी कारण से न्याय की अवधारणा व्यवहार में परिणत होने के स्थान पर अक्सर विचारों का एक पुलिंदा मात्र प्रतीत होने लगती है। आदर्श जहाँ सबको समानता, स्वतन्त्रता, शोषण से मुक्ति,सांस्कृतिक व धार्मिक संरक्षण की बात करते हैं, वहीं यथार्थ में संवैधानिक न्याय आम आदमी की पहुँच से बहुत दूर दिखाई देता है।

इस तरह न्याय की यह व्यापक व सुदीर्घ परम्परा से युक्त अवधारणा अपने लचर व विकृत क्रियान्वयन के चलते एक दूर की कौड़ी बनकर रह जाती है। 'एक विचार' का तमगा प्राप्त कर न्याय की धारणा व्यावहारिक स्तर पर नहीं उतर पाती। इसी कारण से तमाम सरकारी-गैर सरकारी प्रयासों के बावजूद न्याय का यथार्थ इसके आदर्शों की एक धुंधली छाया-सी प्रतीत होती है।

तस्वीर के इस स्याह पहलू के बावजूद पारदर्शिता के इस युग में, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में बहुस्तरीय प्रयास हुए हैं और निरंतर ज़ारी भी हैं। आगामी वर्षों में धीमे-धीमे इन प्रयासों के सुफल 'न्याय के विचार' को और प्रासंगिक बनाएंगे, ऐसा विश्वास है।

विषय से संबंधित कविताएँ व कथन

"कितने ज़ालिम हैं ये दुनिया वाले,
घर से निकलो तो पता लगता है
दो कदम पर है अदालत लेकिन,
सोच लो! वक्त बड़ा लगता है।"

-शकील जमाली

"अदालतों में ही इंसाफ सुर्खरू है मगर
अदालतों में ही इंसाफ हार जाता है।"

-मुनव्वर राणा

"न्याय?
न्याय तुम्हें अगली दुनिया में मिलेगा।
इस दुनिया में तुम्हें सिर्फ कानून मिलेगा।"

-विलियम गैडिस

"क्या फिर यूँ ही दी जाएगी उजरत पे गवाही
क्या तेरी सज़ा अब के भी पाएगा कोई और।"

-आनिस मुईन

खंड–3

पिछले आठ वर्षों में सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए निबंध

2020 में पूछे गए निबंध

1 मनुष्य होने और मानव बनने के बीच का लंबा सफर ही जीवन है

असम की समाज सेविका बीरूबाला राभा ने 15 वर्षों से अधिक समय से डायन प्रताड़ना (विच हंटिंग) के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी है। बिना किसी स्वार्थ के परहित भाव से मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु अपने संगठन 'मिशन बीरूबाला' के माध्यम से उन्होंने इस अभियान को आगे बढ़ाया; उन्हीं के प्रयासों की बदौलत वर्ष 2015 में असम में विच हंटिंग के खिलाफ कानून भी लाया गया। बीरूबाला ने थॉमस हॉब्स के मनुष्य के स्वार्थी होने के सिद्धांत को धता बताते हुए अन्य महिलाओं की सुरक्षा व उनके हितों की रक्षा करने तथा समाज से अमानवीय प्रथा के उन्मूलन हेतु जो योगदान दिया है, वह उन्हें मनुष्य होने की श्रेणी से अलग कर मानव बनने (बीइंग ह्यूमन) की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। मानवता की इस मिसाल के लिये जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियाँ पूर्णत: चरितार्थ होती हैं–

औरों को हँसता देखो मनु, हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सब को सुखी बनाओ।

मानव (ह्यूमन) शब्द मानवता से उद्‌भूत होता है जिसका अर्थ है मानव और प्राणी मात्र के प्रति दयालुता। मनुष्य (ह्यूमन बीइंग) से मानव बनने (बीइंग ह्यूमन) के बीच मूलभूत अंतर मूल्यों के संवर्द्धन का है जिसमें 'स्व' के भाव से हटकर 'पर' के भाव को प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति अपरिहार्य है। इसमें जीवनयापन की प्रवृत्ति से आगे बढ़कर समाज और देश व वैश्विक कल्याण के प्रति संवेदनशील होने की प्रवृत्ति शामिल है। इस कल्याणकारी प्रवृत्ति में मानव कल्याण के साथ-साथ पर्यावरणीय संवृद्धि, अन्य जीव-जंतुओं के कल्याण और सभी वंचित वर्गों व पीड़ितों, जैसे-पिछड़े, दलित, महिलाओं आदि के उत्थान से संबंधित क्रियाविधियाँ शामिल हैं। इस तरह बिना किसी भेदभाव के सभी मानवों व प्राणी मात्र के हितों को साधने हेतु प्रयासरत रहना तथा सर्वे भवन्तु सुखिन: के दृष्टिकोण पर कार्य करना ही मानवता की परम सेवा है। किसी की खुशियों का कारण बनकर स्वसंतोष की अनुभूति भी इसी प्रकिया का हिस्सा है। किंतु इस दौरान मानव बनने की प्रक्रिया थोड़ी जटिल भी है, वस्तुत: इसमें इस बात का जीवनपर्यंत ध्यान रखा जाना चाहिये कि जो भूमिका व्यक्ति विशेष द्वारा निष्पादित की जा रही है, उसकी महत्त्वाकांक्षा मानवता के लक्ष्यों के ऊपर हावी नहीं होनी चाहिये।

मानव जीवन अपूर्णता से भरा हुआ है और उस अपूर्णता के साथ जीवन को संचालित करना तथा उससे सीख लेना मानव होने का अभूतपूर्व लक्षण है, इसलिये हम कह सकते हैं कि मानव होना एक अति सहज संयोग है। वस्तुत: जन्म के समय हर इंसान एक साधारण मनुष्य ही होता है, जीवन के विविध चरणों में उसे परिवार, समाज, मित्र-समूह, शिक्षा और संस्कृति आदि से प्राप्त होने वाले अनुभव और मूल्य ही उसे गांधी या हिटलर बनाते हैं। किंतु यह कतई आवश्यक नहीं है कि हर इंसान, केवल इन्हीं दो वर्गों में ही शामिल होता है; वरन एक साधारण मूल्यों और 'स्व' के भाव के साथ जीवनयापन करने वाला एक आम इंसान जिसे मानवता के संरक्षण या नुकसान का कोई खास फर्क नहीं पड़ता, भी इंसानी बिरादरी का ही एक अभिन्न अंग है। हर इंसान में कुछ-न-कुछ अच्छी और बुरी आदतें होती हैं और अपने अंदर की नकारात्मकता, लालच, ईर्ष्या, स्वार्थीपन आदि का त्याग करके करुणा, दयालुता, समानुभूति, सहानुभूति, क्षमा, परहितकारिता आदि को बढ़ावा देकर मनुष्य होने से मानव बनने की प्रक्रिया को सुकर बनाया जा सकता है।

इंसानों की संगत में रहने के बावजूद हममें बार-बार अपनी मानव बिरादरी में ही यह साबित करने की होड़ लगी रहती है कि हम ह्यूमन बीइंग हैं। दरअसल, इंसान भौतिकवाद, उपभोक्तावाद के पसोपेश में नकारात्मक प्रतिस्पर्द्धा को ढोते हुए अपने मानवीय मूल्यों के साथ समझौता करने में आमादा है। सहजीविता के सिद्धांत के इतर लालच, स्वार्थीपन, ईगो और क्रोध ने प्रेम व करुणा

4 सरलता चरम परिष्करण है

सभ्यताएँ मनुष्य के परिष्कार की विकास यात्रा के संगमील हैं। मानव की जीवन यात्रा निरंतर सभ्य होने की यात्रा है। वह हर अगली घड़ी, अगले दिन, अगले वर्ष और अगले युग में स्वयं की पिछली उपलब्धियों पर कदमताल करता हुआ स्वयं को सभ्यतर करता रहता है। यह प्रक्रिया सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जैसे कई स्तरों पर लगातार चलती रहती है। नीत्शे, अरविंद तथा पतंजलि जैसे दार्शनिकों ने मानव के निरंतर परिष्कार के गुण को ही मानव जीवन का मूल माना है। नीत्शे एक परिष्कृत मनुष्य के लिये महामानव (ओवरमैन) की कल्पना करते हैं, जो मानव में अधिक आस्थायुक्त तथा अधिक चेतन हो। प्रसिद्ध पुस्तक 'दस स्पोक जरथुस्त्र' में नीत्शे लिखते हैं, "महामानव और पशु के बीच तनी हुई रस्सी है मानव।" वे कहते हैं, "आदमी से कुछ ज़्यादा बनने के लिये तुमने क्या किया? जैसे तुम एक बंदर को देखकर हँसते हो उसी तरह महामानव भी तुम्हें देखकर हँसेगा।" नीत्शे की कल्पना का यह महामानव दरअसल परिष्कृत मानव ही है। अरविंद के आदर्शों का सुपरमैन भी चेतना के स्तर पर उठा हुआ परिष्कृत मानव ही है।

मनुष्य के साथ विडंबना यह हुई कि वह ज्यों-ज्यों स्वयं को अधिक सभ्यतर और परिष्कृत करने का प्रयास करता गया, सतही तौर पर परिष्कृत तो हुआ परंतु आभ्यंतर के परिष्करण के मार्ग उसने अवरुद्ध कर लिये। भौतिक के विकास की विधि तो उसने खोज निकाली परंतु चेतन के उन्नयन की कीमिया को नज़रअंदाज़ करता गया। बुद्धि के विकास की लाख तरकीबें ईजाद कर लीं मगर भावनाओं से रिक्त होता गया। इससे उसके व्यक्तित्व में एक विखंडन पैदा हुआ, एक अंतराल उत्पन्न हुआ जो उसे अधिक हताश और दुखी करने वाला था। मनुष्य भौतिक उपलब्धियों द्वारा आत्मिक सुख को झपट लेना चाहता था लेकिन वह मुमकिन न था। वह पुष्प के रेशे-रेशे अलग कर उसकी सुंदरता और सुगंध को समझ लेना चाहता था, लेकिन इससे केवल कुछ रासायनिक सूत्र प्राप्त हो सकते थे, पुष्प की सुंदरता और सुगंध को हृदय में महसूस करना संभव न था। उसने समुद्र की अतल गहराइयों से लेकर अंतरिक्ष की असीमता को भेद दिया, परंतु हृदय के अंदर उठती तरंगों को महसूस कर पाने में नाकाम रहा। मनुष्य ने मंदिर, मस्जिद और गिरजा के नाम पर बड़ी अट्टालिकाएँ तो खड़ी कर लीं पर वहाँ इश्वरत्व को स्थापित करना मुमकिन न हुआ। सुविधाओं की भागदौड़ में उसने आत्मिक सुख का खयाल न किया। इस तरह उसने अपने जीवन में एक जटिलता पैदा कर ली, अपने बाहरी जीवन और अंतस की साम्यता को विखंडित कर दिया। जीवन में इतने शोर पैदा कर लिये कि अंदर की सुरलहरी जैसे कहीं खो गई।

सभ्यता की अधूरी परिभाषाओं में मनुष्य का चित्त जटिल हो गया। वह किन्हीं घटनाओं पर क्रोध करना चाहता है परंतु सभ्यता की, नैतिकता की मांग ऐसी है कि वहाँ क्रोध नहीं प्रकट कर सकता। यह क्रोध की उठती ऊर्जा उसके चित्त को चोटिल करती है। किसी को देखकर प्रेम उठता हो, मगर सभ्यता की बाधाएँ प्रेम प्रकट करने से बाधित करती हैं। किसी आह्लादित करने वाली धुन पर झूम उठने का मन करता हो, परंतु व्यक्तित्व और समाज की रुकावटें पैरों को जकड़ ले रही हैं। किसी को देखकर वासना मन में हिलोरें मारती हों लेकिन सभ्यताएँ संस्कार का पाठ पढ़ाने लगती हैं, इस तरह की तमाम असाम्य परेशानियों में मनुष्य का मन जकड़ा है, और ये ऊर्जा जो स्वाभाविक रूप से मन में क्रोध, प्रेम, वासना आदि के रूप में उठ रही हैं, उनका अप्राकृतिक दमन इसके विकृत रूपों में बाहर आ रहा है। इसलिये व्यक्ति मौका मिलते ही कहीं हिंसा कर दे रहा है, कहीं दंगों में झोंका जा रहा है तो कहीं बलात्कार कर रहा है। ये सारी घटनाएँ उसी विखंडित मन की जटिलताओं का परिणाम हैं। इन्हीं जटिलताओं को प्रसिद्ध मनोविश्लेषक सिग्मंड फ्रायड चेतन, अवचेतन और अचेतन के बीच का द्वैत कहते हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य का मन कई परतों में विभाजित है। हम जो व्यवहार करते हैं, जो सोचते हैं वह हमारे मस्तिष्क (मन) का बहुत छोटा-सा हिस्सा है जिसे वे चेतन कहते हैं। मस्तिष्क का एक बड़ा हिस्सा जो अचेतन तथा अवचेतन है, जिसका हमने सामाजिक संस्कारों और सभ्यताओं द्वारा इतना दमन किया कि वह कभी हमारे खयाल में भी नहीं आता। जब कभी व्यक्ति अपनी सामाजिक पहचान से मुक्त होता है या स्वप्न में होता है तो यह अवचेतन मन हावी हो जाता है। जो व्यक्ति समाज की जितनी नैतिकताओं और सभ्यताओं द्वारा जकड़ लिया गया है उसके अचेतन तथा अवचेतन मन के प्रभावी होने की संभावना उतनी ही न्यून होती है। व्यक्तित्व की यही जटिलता मनुष्य को अशांत रखती है, वह धन तो खोज लेता है लेकिन प्रेम की तड़प अंततः उसे बेचैन रखती है। वह मन को बहलाने को शोर तो पैदा कर लेता है परंतु शांति की एक झलक के लिये परेशान रहता है। वह कृत्रिम व्यवस्थाओं और भागदौड़, तकनीकी के जाल में खुद को व्यस्त तो कर लेता है लेकिन मन के अंदर का सूनापन अंततः कचोटता है।

5 जो हम हैं, वो संस्कार; जो हमारे पास है, वो सभ्यता

सभ्यता शरीर है तो संस्कृति आत्मा है, सभ्यता आपके भौतिक अन्वेषण की पीड़ा का परिणाम है, वहीं संस्कृति आपकी बुद्धिमत्ता का प्रतिफल है।

–श्री प्रकाश

वर्तमान सभ्यता का सृजन अतीत की परंपराओं, संस्कृतियों और कृत्यों के संयोजन से हुआ है। आज हम जो वस्त्र पहनते हैं या भाषा का प्रयोग करते हैं उसकी जड़ें अतीत में देखी जा सकती हैं। एक प्रकार से मानव सभ्यता सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की उन्नत अवस्था है जो मानवीय संस्कृति/संस्कार के विभिन्न लक्षणों का भौतिक परिदृश्य है। संस्कृति एक सामाजिक समूह या वर्ग की सामूहिक बौद्धिक उपलब्धि है जिसके सानिध्य में एक सभ्यता का उद्भव और विकास होता है। दरअसल सभ्यता और संस्कृति एक-दूसरे से अंतर्संबंधित हैं जो एक समुदाय या एक भौगोलिक क्षेत्र की विशिष्ट पहचान को निरूपित करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में कुछ प्रश्न स्वाभाविक ही हैं, जैसे- सभ्यता और संस्कृति क्या है? इनका अंतर्संबंध कैसा है? वर्तमान में इनका स्वरूप किस प्रकार परिवर्तित हो रहा है? आधुनिक जीवन में इनकी क्या भूमिका है?

संस्कृति एक समूह के विचार, व्यवहार और कृत्य का संयोजन है। एक संस्कृति ही समाज की विचारधारा को तय करती है, जैसे-भारतीय संस्कृति की विचारधारा समावेशिता की है। इसके आधार पर 'वसुधैव कुटुम्बकम' के विचार का अनुसरण करते हुए, हमनें न सिर्फ दुनिया भर के शरणार्थियों को आश्रय दिया है बल्कि उनकी संस्कृति को अपनी सभ्यता में समावेशित भी किया है। इसी तरह हमारे व्यवहार का निर्धारण संस्कृति से होता है, जैसे-सनातन धर्म या हिंदू धर्म में धर्म परिवर्तन को लेकर उग्रता का भाव नहीं है जबकि पश्चिम के कुछ धर्मों में धर्म परिवर्तन के प्रति उग्र व्यवहार देखा जा सकता है। इन्हीं विचारों और व्यवहारों के आधार पर एक समूह के कृत्य प्रभावित होते हैं। एक संस्कृति की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर सभ्यता का विकास होता है।

सांस्कृतिक विशेषताओं के समावेशन से निर्मित मानव समाज के उन्नत सामाजिक, भौतिक और प्रशासनिक स्वरूप को सभ्यता कहा जाता है। एक सभ्यता की उन्नति राष्ट्र, समुदाय या क्षेत्र के सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करती है। इसी संदर्भ में देखा जा सकता है कि विश्व की सबसे प्राचीन नगरीय सभ्यताओं, जैसे-सिंधुघाटी और मेसोपोटामिया का विकास भी क्रमशः सिंधु नदी और टाइग्रिस नदी के अपवाह क्षेत्र की संस्कृतियों से हुआ था। इसी तरह विविध काल खंडों में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में ग्रीक, रोमन और यहूदी, क्रिश्चियन संस्कृतियों के आधार पर सभ्यताओं का उदय हुआ था। आज विश्व की ही अधिकांश प्राचीन सभ्यताओं का ध्वंस हो गया है किंतु अधिक समावेशी और नम्य सिंधु सभ्यता की विशेषताएँ आज भी सिंधु-गंगा के मैदान में देखी जा सकती हैं। इसी संदर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा है-

दुनियाँ का इतिहास पूछता
रोम कहाँ, यूनान कहाँ है
घर-घर में शुभ अग्नि जलाता
वह उन्नत ईरान कहाँ है?
दीप बुझे पश्चिमी गगन के
व्याप्त हुआ बर्बर अँधियारा
किंतु चीर कर तम की छाती
चमका हिंदुस्तान हमारा।

इस तरह एक मज़बूत सांस्कृतिक आधार सभ्यता को नष्ट या विखंडित होने से संरक्षण प्रदान करता है। एक सभ्यता का अस्तित्व संस्कृति पर पूर्णतः निर्भर होता है जबकि संस्कृति की निरंतरता सभ्यता पर आश्रित नहीं है। आज भी सिंधु सभ्यता की कई सांस्कृतिक प्रथाएँ भारतीय समाज में देखी जा सकती हैं, जैसे- स्त्रियों द्वारा आभूषण धारण करना, पशुपति शिव का पूजन करना आदि। सभ्यता संस्कृतिरूपी साध्य की प्राप्ति का एक साधन मात्र है जिसका ध्येय संस्कृति के मूल्यों को स्थापित और प्रसारित करना है। संस्कृति एक आंतरिक मूल्य या विशेषता है जिसकी बाह्य अभिव्यक्ति सभ्यता है। संस्कृति एक अमूर्त प्रक्रिया है जिसकी मूर्त अभिव्यक्ति सभ्यता की विभिन्न संरचनात्मक गतिविधियों में होती है।

6 बिना आर्थिक समृद्धि के सामाजिक न्याय नहीं हो सकता, किंतु बिना सामाजिक न्याय के आर्थिक समृद्धि निरर्थक है

"रेडियो टिप्पणीकार कहता है- 'घोर करतल-ध्वनि हो रही है।' मैं देख रहा हूँ, नहीं हो रही है। हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं। बाहर निकालने का जी नहीं हो रहा है। हाथ अकड़ जाएंगे। लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में ज़मीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिये कोट नहीं है। लगता है, गणतंत्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतंत्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती हैं, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिये गर्म कपड़ा नहीं है। पर कुछ लोग कहते हैं – 'गरीबी मिटनी चाहिये।' तभी दूसरे कहते हैं – 'ऐसा कहने वाले प्रजातंत्र के लिये खतरा पैदा कर रहे हैं।"

हरिशंकर परसाई के प्रसिद्ध व्यंग्य 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' से लिया गया उक्त गद्यांश गणतंत्र दिवस की परेड की पृष्ठभूमि में नज़र आ रही असमानता का दृश्य बेहद सटीकता से निरूपित करता है। एक ओर देश की आर्थिक समृद्धि से लाभान्वित वर्ग ओवरकोट में हाथ डाले हुए खड़ा है, वहीं दूसरी ओर इस आर्थिक लाभ के दूसरे सिरे पर मौजूद वे लोग हैं जो संसाधनों के समुचित वितरण के अभाव में इस तरक्की का लाभ उठाने से वंचित रह गए। हालाँकि परसाई जी द्वारा यह व्यंग्य 70 के दशक में लिखा गया था, उसके लगभग आधी सदी बाद आज भी आर्थिक असमानता की स्थिति भले ही आकार में बदल गई हो परंतु स्वरूप में जस-की-तस है। दरअसल राष्ट्रीय आर्थिक समृद्धि एक जटिल प्रक्रिया है। अक्सर हम आर्थिक मानकों पर दर्ज की गई बढ़ोतरी को ही राष्ट्र का विकास समझ लेते हैं परंतु यह आर्थिक समृद्धि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व पारिस्थितिकीय मूल्यों से अंतर्सबद्ध है, जिसमें संघर्ष, सहजीवन, प्रभाव और प्रतिबंध भी शामिल हैं। यह अंतर्सबंध तेज़ी से बदलता रहता है, जिससे इस बात की पुष्टि करने में कठिनाई होती है कि आर्थिक समृद्धि किन कारकों से संचालित होती है और इसे प्राप्त करने के लिये क्या मूल्य चुकाया जाता है? इसीलिये आर्थिक समृद्धि और सामाजिक न्याय के बीच के अंतर्संबंध को स्पष्टत: समझा जाना और यह समझा जाना आवश्यक है कि कैसे आर्थिक समृद्धि तब तक निराधार है जब तक उसके लाभों का न्यायपूर्ण वितरण समाज के सभी वर्गों तक न हो जाए।

अवधारणा के स्तर पर बात की जाए तो, आर्थिक समृद्धि को मोटे तौर पर आय, अर्थव्यवस्था की नम्यता, संसाधनों का वितरण, इस वितरण की समता, धारणीयता और लोगों के पास उपलब्ध विकल्प इत्यादि मानकों पर मापा जाता है। यदि उक्त मानकों पर कोई अर्थव्यवस्था सकारात्मक वृद्धि दर्ज कर रही है, अर्थात् यदि वहाँ आय बढ़ रही है, अर्थव्यवस्था थोड़ी-बहुत गिरावट के बाद पुन: तेज़ी से विकास की पटरी पर लौटने में सक्षम है, आर्थिक संसाधनों का वितरण समुचित और समानता के आधार पर हो पा रहा है, वृद्धि धारणीय प्रकृति की है और इन सभी मानकों पर अर्थव्यवस्था के अच्छे प्रदर्शन के सम्मिलित परिणामस्वरूप लोगों के पास उपलब्ध विकल्पों में इज़ाफा हो रहा है, तो यह माना जाएगा कि वह अर्थव्यवस्था समृद्धि की दिशा में आगे बढ़ रही है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक न्याय की अवधारणा नाम के अनुरूप ही 'न्यायसंगतता' पर आधारित है। इसमें प्रमुखत: आय सहित खुशहाली, अवसर, स्वतंत्रता, उदारता, अधिकार एवं आवश्यकताएँ जैसे तत्त्व शामिल होते हैं। सरल शब्दों में इसे कठोर प्रतियोगिता के विरुद्ध दुर्बल, वृद्ध, दीन-हीनों, महिलाओं, बच्चों और अन्य वंचित वर्गों को राज्य द्वारा दिये जाने वाले संरक्षण के रूप में समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक न्याय का सिद्धांत एक 'विषमता-आधारित समाज' के 'सर्वसमावेशी समाज' के रूप में परिवर्तन में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। उल्लेखनीय है कि सामाजिक न्याय की संकल्पना सामाजिक अन्याय की पृष्ठभूमि में उत्पन्न हुई है। यह सबके लिये विकास की समान दशाएँ तथा प्रतिष्ठा व अवसर की समानता सुनिश्चित करता है।

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय की आदर्श स्थिति प्राप्त करने हेतु न केवल आर्थिक समृद्धि आवश्यक है बल्कि उस समृद्धि का समता व न्याय आधारित वितरण भी अनिवार्य है। इस प्रकार सामाजिक न्याय की एक स्वीकार्य स्थिति प्राप्त करने के लिये पहले कुछ मूलभूत संसाधन सृजित व एकत्रित करने की भी आवश्यकता होगी। यहीं से किसी भी देश के लिये आर्थिक मोर्चे पर आगे बढ़ने और अपनी स्थिति मज़बूत कर लेने की एक बड़ी प्रेरणा उत्पन्न होती है। यदि समाज के वंचित वर्गों तक संसाधनों व आर्थिक लाभों की पहुँच सुनिश्चित करनी है तो सबसे पहले देश में पूंजी निर्माण के माध्यम से इन वर्गों के लिये अवसर सृजित करने होंगे। जब तक किसी अर्थव्यवस्था में एक उन्नत रोज़गार बाज़ार न मौजूद हो तब तक वंचित वर्गों के

7 "पितृसत्ता की व्यवस्था नज़र में बहुत कम आने के बावजूद विषमता की सबसे प्रभावी संरचना है।"

"पढ़िये गीता
बनिये सीता
फिर इन सबमें लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर-बार बसाइये
होंय कँटीली
आँखें गीली
लकड़ी सीली, तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भर कर भात पसाइये।"

कवि 'रघुवीर सहाय' मात्र दस पंक्तियों की अपनी इस कविता में उस व्यवस्था की पूरी सच्चाई उकेर देते हैं जहाँ भेदभावमूलक और निरर्थक जीवन की तहें इतने सलीके से सजाई गई होती हैं कि वो उचित और स्वाभाविक लगती हैं। इतना ही स्वाभाविक कि रोज़ व्यतीत हो रहे इस जीवन के विरुद्ध समाज कोई प्रतिक्रिया नहीं देता। अरे! प्रतिक्रिया क्यों? वह तो चौंकता भी नहीं। सभ्यताई विकास और सांस्कृतिक निर्मिति की पूरी संरचना ही इस रूप में संचालित होती रही है जिसका लक्ष्य स्त्रियों को 'कमतर मनुष्य' के रूप में तैयार करना है। इस पूरी व्यवस्था को प्रसिद्ध नारीवादी चिंतक 'सिमोन द बोउवार' ने एक वाक्य में सूत्रबद्ध कर दिया है- "स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है।" आखिर वह कौन-सी व्यवस्था है जो स्त्री को स्त्री बना देती है? यह व्यवस्था है- पितृसत्ता।

पितृसत्ता का सामान्य अर्थ एक पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था से है अर्थात् सामाजिक हैसियत का ऐसा पदानुक्रम जहाँ पुरुष शीर्ष पर है और महिला तल पर। यहाँ इस बात को और स्पष्टता से कह देने की आवश्यकता है कि भेदभाव की यह कोई लैंगिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह एक विशुद्ध सांस्कृतिक परिघटना है। लिंग आधारित जैवकीय अंतर तो प्राकृतिक हैं किंतु इस आधार पर दो अलग सामाजिक संसार बना देना एक मानवीय कृत्य है। इस अलग और भेदभावपूर्ण संसार की रचना ही पितृसत्ता के मूल में है। पितृसत्ता विचारों के रूप में गढ़ी जाती है और व्यवहारों के माध्यम से मूर्त होती है। विचार के रूप में पितृसत्ता के बीज धार्मिक ग्रंथों से लेकर राजनीतिक सिद्धांतों तक में देखे जा सकते हैं। प्लेटो, अरस्तू, देकार्त जैसे विचारकों ने स्त्री को परिवार, प्रजनन तथा मातृत्व के साथ जोड़कर उसके अस्तित्व को पराश्रित तथा विस्तार को संकुचित कर दिया। जर्मन दार्शनिक हीगल ने तो स्त्री-पुरुष की दो अलग दुनिया का ही निर्माण कर डाला जिसमें महिलाओं के लिये 'प्राइवेट स्फीयर' तथा पुरुषों के लिये 'पब्लिक स्फीयर' निश्चित किया। स्वाभाविक रूप से यहाँ महिलाओं के सार्वजनिक जीवन के लिये कोई स्थान नहीं था। रूसो जैसे चिंतक स्त्री को बौद्धिक गतिविधि के योग्य नहीं मानते थे। रूसो ने सदाचार और सद्गुणों को भी स्त्री और पुरुष दोनों के लिये अलग-अलग निर्धारित किया। जैविक तात्त्विकवाद के दर्शन ने तो पुरुष को जन्मना श्रेष्ठ व योग्य तथा स्त्री को जन्मना सामान्य माना। कुल मिलाकर कहने का भाव यह है कि पितृसत्ता का विचार भेदभाव को जायज़ मानने की बुनियाद पर टिका है, और यही विचार सामाजिक व्यवहारों के रूप में प्रत्यक्ष होता है। आखिरकार यह विचार किस प्रकार प्रत्यक्ष होकर विषमता की प्रभावी संरचना निर्मित करता है, इससे पहले यह देख लेना अधिक उचित होगा कि आखिर इतनी प्रभावशाली संरचना आसानी से नज़र क्यों नहीं आती?

इस संदर्भ में मुख्यत: दो पक्षों का उल्लेख किया जा सकता है। एक तो पितृसत्ता सामाजिक जीवन में इस तरह घुल-मिल गई है कि भेदभाव की पहचान करना मुश्किल हो जाता है। और स्पष्टता से कहा जाए तो पितृसत्तावादी भाव से संचालित व्यवहार इतने रूढ़ हो गए हैं कि जब तक विशिष्ट रूप से इस ओर ध्यान न दिया जाए, भेदभाव का एहसास नहीं होता। उदाहरण के लिये लड़कों व लड़कियों के लिये अलग-अलग समाजीकरण की प्रक्रिया को अपनाना- जहाँ लड़कियों को अधिकांशत: घरेलू सीमा के भीतर गुड़िया जैसे खिलौने के साथ खेलने के लिये प्रोत्साहित करना तो लड़कों को इस दायरे के बाहर क्रिकेट या फुटबॉल जैसे खेलों के लिये छूट देना। एक ओर घर की कोमल दुनिया के अनुरूप विनम्र स्वभाव की सीख है तो दूसरी ओर बाहर की दुनिया से होड़ लेने की आक्रामक ट्रेनिंग। यही प्रक्रिया आगे बढ़कर एक खास ढंग से जीवन बरतने की ओर बढ़ जाती है जहाँ लड़कियों से पारिवारिक मूल्यों के अनुकूल व्यवहार करने, विनम्र व लज्जाशील होने, घरेलू आवश्यकताओं को प्राथमिक मानने और सबसे बढ़कर अपनी पवित्रता कायम रखने की न केवल अपेक्षा की जाती है बल्कि उन्हें इसी तरह तैयार किया जाता है; लड़कों को इन बंदिशों से विस्तृत छूट दे दी जाती है। इस प्रकार लड़कियों के जीवन को इस प्रकार तराशा जाता है कि वे पितृसत्तावादी संस्कृति के अनुकूल हो जाती हैं। व्यवस्था के प्रति यह

1 विवेक सत्य को खोज निकालता है

सूर्य केंद्र में है या पृथ्वी? कौन किसका चक्कर लगाता है? शायद आज किसी व्यक्ति से यह प्रश्न पूछा जाए, तो वह आसानी से इसका जवाब दे सकता है कि सूर्य केंद्र में है। लेकिन इस सत्य पर पहुँचने की राह वर्तमान में जितनी आसान दिखाई देती है, उतनी है नहीं। मध्यकाल तक इस तथ्य को लेकर संभवत: सर्वसम्मति रही होगी कि पृथ्वी केंद्र में है तथा सूर्य पृथ्वी के चक्कर लगाता है अथवा ऐसा हो सकता है कि जब चर्च या पादरियों ने बता ही दिया है कि पृथ्वी केंद्र में है, तो फिर हमने इस पर संदेह व्यक्त करने की हिम्मत नहीं जुटाई कि इस तथ्य की प्रामाणिकता की जाँच करें। लेकिन कुछ विवेकशील मनुष्यों को इस तथ्य की प्रामाणिकता पर संदेह आया होगा और उनके विवेक ने सत्य की खोज के लिये उन्हें प्रेरित किया होगा। अंतत: वे इस सत्य पर पहुँच ही गए कि 'पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य केंद्र में है तथा पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है।' परंतु कहा जाता है कि 'सत्य कड़वा होता है।' जब हमारे सामने सत्य आता है, तो उसे स्वीकारना आसान नहीं होता। मध्यकाल में चर्च की सत्ता को चुनौती देना कितना कठिन था, इस बात को हम अच्छी तरह जानते हैं। इसके बावजूद कॉपरनिकस, ब्रूनो व गैलीलियो जैसे वैज्ञानिकों ने अपने विवेक के बल पर यह खोज करने का प्रयत्न किया कि वास्तव में सत्य क्या है? और समाज के विपरीत अपने मत का प्रतिपादन किया। ब्रूनो को तो सत्य की खोज के लिये ज़िंदा जला दिया गया।

इसी क्रम में निबंध के शीर्षक के अनुरूप एक प्रचलित कहानी की भी चर्चा करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। एक बार एक राजा के दरबार में दो महिलाएँ आईं, जो किसी बच्चे को लेकर अपना-अपना दावा प्रस्तुत कर रही थीं। इस परिस्थिति में राजा के लिये न्याय करना मुश्किल हो गया। आधुनिक काल के समान उस समय डीएनए जैसी टेक्नोलॉजी भी नहीं थी, जिससे समस्या का उचित समाधान किया जा सके तथा न्याय हो सके। अत: राजा ने अपने विवेक का प्रयोग किया और सत्य को खोजने का प्रयत्न किया। राजा ने क्रोधित होकर कहा कि इस बच्चे के तलवार से दो हिस्से कर दिये जाएँ एवं दोनों महिलाओं को एक-एक हिस्सा दे दिया जाए। राजा के इतना कहने पर उनमें से एक महिला ने तुरंत कहा- "महाराज, आप बच्चे को इस महिला को दे दीजिये।" उस महिला के मुख से ऐसी बात सुनकर राजा समझ गया कि बच्चा किसका है और न्याय सामने आ गया।

उपर्युक्त संदर्भों के आधार पर प्रथम दृष्टया तो यही प्रतीत होता है कि विवेक सत्य को खोज निकालता है। यद्यपि इसका सूक्ष्म विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। इससे पूर्व, सर्वप्रथम यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि ज्ञान (Knowledge) और विवेक (Wisdom) दोनों समानार्थी हैं या इनमें अंतर भी विद्यमान है। वस्तुत: वैसे तो सामान्यत: लोग ज्ञान और विवेक को समानार्थी ही मानते हैं। परंतु दोनों में मौलिक असमानता है। ब्रिटिश निबंधकार, दार्शनिक और इतिहासकार 'बर्ट्रेंड रसेल' अपने निबंध 'Knowledge and Wisdom' में इनके मध्य अंतर की विस्तृत चर्चा करते हैं। रसेल Knowledge अर्थात् 'ज्ञान' को डाटा या सूचनाओं के संग्रहण अथवा किसी वस्तु के बारे में प्राप्त जानकारी के रूप में परिभाषित करते हैं। जबकि उनके अनुसार, Wisdom अर्थात् 'विवेक' अपने अनुभवों व परिश्रम से इन सूचनाओं का व्यावहारिक अनुप्रयोग करने से संबंधित है। विशेष बात यह भी है कि इस व्यावहारिक अनुप्रयोग में नैतिक मूल्य अनिवार्यत: शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त विवेक में बुद्धि पक्ष के साथ-साथ भावनाओं का भी संतुलित सामंजस्य होता है। स्पष्ट है कि विवेक, ज्ञान से उच्चतम है। विवेक के अभाव में ज्ञान हानिकारक हो सकता है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से भलीभाँति समझ सकते हैं- किसी व्यक्ति को परमाणुओं और अणुओं का ज्ञान है, किंतु अगर उसमें विवेक नहीं है, तो हो सकता है कि वह अपने ज्ञान का उपयोग मानवीय सभ्यता के विकास में न करके परमाणु हथियारों का निर्माण करके

1 'जलवायु परिवर्तन के प्रति सुनम्य भारत हेतु वैकल्पिक तकनीकें'

"जंगल, पेड़, पहाड़, समंदर
इंसा सब कुछ काट रहा है
छील-छील के खाल ज़मीं की
टुकड़ा-टुकड़ा बाँट रहा है
आसमान से उतरे मौसम
सारे बंजर होने लगे हैं
मौसम बेघर होने लगे हैं।"

कवि गुलज़ार की ये पंक्तियाँ प्रकृति के अवक्रमण में मानवीय भूमिका की गाथा कह रही हैं जिसका परिणाम आज हमारे सामने 'जलवायु परिवर्तन' के रूप में उपस्थित हुआ है। इस जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक ओर पृथ्वी के दोनों ध्रुवों की बर्फीली चट्टानें पिघल रही हैं तो दूसरी ओर धरती का तीसरा ध्रुव अर्थात् हिमालय, हिंदुकुश पर्वतमाला का बर्फीला क्षेत्र भी संकुचित हो रहा है। निश्चित ही तीसरे ध्रुव के इस संकुचन का प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के इस बहुआयामी एवं बहुव्यापी प्रभाव का सामना करने के लिये हमारे पास जलवायु सुनम्य (जलवायु सह्य) तकनीकें प्रमुख आधार बनकर उभरी हैं। इन तकनीकों में वैज्ञानिक खोजें तथा परंपरागत व स्वदेशी ज्ञान से अर्जित वैकल्पिक तकनीकें शामिल हैं। ध्यातव्य है कि जलवायु परिवर्तन एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है जो जलवायु के गुणों में विविध परिवर्तन को संदर्भित करता है और जिसकी पहचान सांख्यिकीय परीक्षण के माध्यम से की जाती है। जलवायु परिवर्तन की इस प्रक्रिया में औद्योगीकरण के पश्चात् मानवीय कारक ने प्रमुख भूमिका निभाई है। भारत सहित पूरी दुनिया में जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़, ऊर्जा तथा खाद्य सुरक्षा, प्रवासन, बीमारियाँ, राजनीतिक अस्थिरता एवं सशक्त संघर्ष का खतरा बढ़ा है।

मानवता पर आसन्न उपर्युक्त खतरों ने मानव को विवश किया है कि वह जीवन-योग्य भविष्य के निर्माण के लिये सतत्, समावेशी एवं स्थायी वर्तमान की अवधारणा को स्वीकार करे। निश्चय ही इस प्रक्रिया ने मानव को जलवायु सुनम्य (जलवायु सह्य) तकनीकों के विकास के लिये प्रेरित किया है। 'सुनम्यता' एक ऐसी क्षमता है जिसके द्वारा एक खतरनाक घटना या प्रवृत्ति या परेशानी का सामना करने के लिये सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय प्रणालियों को तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया में इन प्रणालियों की पहचान, कार्यप्रणाली तथा संरचना को सुरक्षित रखते हुए इनकी अनुकूलन क्षमता को बनाए रखा जाता है। भारत के संदर्भ में सुनम्य वैकल्पिक तकनीकों पर विचार करने से पहले यहाँ जलवायु परिवर्तन से जुड़े खतरों को समझ लेना आवश्यक होगा। जलवायु परिवर्तन की अवधारणा को सत्यापित करने वाली विभिन्न आई.पी.सी.सी. (इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज) की रिपोर्टों पर यदि ध्यान दें तो उनमें स्पष्ट किया गया है कि जलवायु परिवर्तन से नदीय, तटीय एवं शहरी बाढ़ में वृद्धि से बड़े पैमाने पर अवसंरचना, आजीविका एवं बसावट में बदलाव आएगा। इसके अलावा तापजन्य मृत्यु, सूखाजन्य खाद्य असुरक्षा एवं कुपोषण में वृद्धि जैसे सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय संकट बढ़ेंगे। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन 2030 तक 122 मिलियन लोगों को अति गरीबी की अवस्था में ले जा सकता है। ऐसी स्थिति में भारत भी गरीब जनसंख्या के दबाव का सामना कर सकता है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन से बढ़ने वाले समुद्री जलस्तर से मुंबई व कलकत्ता जैसे महानगरों

1 भारत में अधिकतर कृषकों के लिये कृषि जीवन-निर्वाह का एक सक्षम स्रोत नहीं रही है।

एक प्रतिष्ठित पत्रिका का पत्रकार कृषि की स्थिति का जायज़ा लेने के लिये गाँवों में किसानों के बीच जाता है तथा उनसे बतौर सर्वे एक प्रश्न पूछता है कि आप अपने बच्चे को भविष्य में क्या बनाना चाहते हैं? प्राप्त उत्तर बहुत चौंकाने वाला होता है। एक ऐसे देश में जहाँ कृषि मात्र एक आर्थिक व्यवसाय व रोज़गार का प्रश्न न होकर लोगों की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा आस्था से जुड़ा मामला है, जहाँ कृषकों की फसलों के हिसाब से त्यौहारों का निर्धारण होता है तथा कवियों की कल्पना में इसके स्वर्णिम दौर के गीत विद्यमान हैं, वहाँ 40% किसान अपने बच्चे को किसानी के धंधे को नहीं अपनाने देना चाहते! उनके अनुसार विकल्प के रूप में वे बच्चे को कुछ भी सम्मानजनक कार्य करने की सहमति दे देंगे, लेकिन खेती-किसानी की नहीं!! किसानों का यह उत्तर एकबारगी चौंकाता ज़रूर है; लेकिन कोई भी प्रबुद्ध संवेदनशील व्यक्ति भारत में कृषि की स्थिति को देखेगा तो संभवतः यही उत्तर देगा। कृषकों में लगातार बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति भारत में कृषि के जीवन निर्वाह के बेहतर साधन न रह जाने की तस्दीक ही करती है। यह विडंबना इसलिये भी ज़्यादा वीभत्स महसूस होती है क्योंकि भारत ही वह देश है जहाँ 'भूमि' को 'माँ' का दर्जा दिया गया है, जहाँ हर जलवायु उपलब्ध है, जहाँ हर प्रकार की फसल को समर्थन देने वाली मिट्टी है, नदियों का इतना विस्तृत संगम है जो सिंचाई की आवश्यकता को पूरा कर सकता है और पर्वत, पठार, तटीय मैदान, डेल्टा आदि भी यहाँ हैं जिनमें हर प्रकार की फसल का उत्पादन हो सकता है। एक ऐसा विशाल मानव श्रम भी यहीं है जो कृषि से संबंधित पारंपरिक ज्ञान भी रखता है तथा इसके साथ ही उत्पादन को खपाने के लिये विशाल बाज़ार की भी यहाँ उपलब्धता है। कवि ने इसी वजह से 'भारत' को 'खेत' का पर्याय माना है-

"भारत......
मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए
बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं
भारत के अर्थ
किसी दुष्यंत से संबंधित नहीं
वरन् खेत में दायर है
जहाँ अन्न उगता है।"

ऐसे में मन में कुछ प्रश्नों का उठना लाज़िमी है, मसलन ऐसे कौन से लक्षण हैं जो भारत में कृषि के जीवन-निर्वाह के सक्षम स्रोत न रह जाने की पुष्टि करते हैं? क्या कृषि की यह दशा भारत में ही है? क्या सभी कृषकों की ऐसी ही स्थिति है? या इसमें भी छोटे-बड़े कृषक, ज़मींदार-रैय्यत व मज़दूर की स्थिति अलग-अलग है? जब कुछ बड़े किसान आज भी कृषि से लाखों कमा रहे हैं तो बाकियों के लिये यह दु:खदायी साधन क्यों है? कृषि का जीवन निर्वाह का स्रोत न रह जाना क्या वर्तमान की स्थितियों का परिणाम है या कृषि की नियति हमेशा से ही ऐसी रही है? मूल प्रश्न यह है कि कृषि की स्थिति ऐसी क्यों है? क्यों कृषि 'प्राणदायिनी' से 'मौत का औज़ार' बन गई हैं? क्यों आज किसान को सोचते हुए वही स्मृति आती है जो प्रेमचंद ने 'होरी' का वर्णन करते हुए लिखी थी? क्यों पढ़-लिख जाने को किसानी से दूर जाने का पर्याय माना जाता है? और अंततः कृषि की यह स्थिति कब व कैसे सुधरेगी? इन प्रश्नों की तह तक जाकर ही हम इस मुद्दे की मूल ज़रूरत के साथ न्याय कर पाएंगे।

सेंट थॉमस एक्बीनास, अरस्तू, प्लेटो, सिसरो के विचार हों या अमेरिका, ब्रिटेन की विधि संहिताएँ उनमें प्राकृतिक विधि की अपरिहार्यता का विचार प्रभावी है। सिसरो कहता है कि "प्राकृतिक कानून हमें बड़े समाज के सामान्य भंडार में योगदान करने के लिये बाध्य करते है। उनका उद्देश्य नागरिकों की सुरक्षा, राज्यों का संरक्षण, शांति और मानवीय जीवन की खुशी प्रदान करना है।" सिसरो ने प्राकृतिक कानूनों को सार्वभौमिक बताया और लिखा कि इन्हें कभी भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार– "प्राकृतिक कानून सभी राष्ट्रों और सभी समय के लिये अनंत व अपरिवर्तनीय हैं।" बाइबिल व कुरान जैसी पुस्तकों में भी प्राकृतिक कानूनों का समर्थन किया गया। वास्तव में धर्म नैतिक अवधारणा की ही उपज थी तथा प्राकृतिक कानून नैतिक अवधारणाओं का आधार। सेंट पॉल, सेंट एम्ब्रोज़, सेंट ऑस्टाइन जैसे संतों ने इन प्राकृतिक कानूनों की व्याख्या की। इन लोगों ने राज्य को भी प्राकृतिक कानूनों के अधीन बताया और इस मान्यता को बल प्रदान किया कि राज्य सहित कोई भी संप्रभु संस्था प्राकृतिक कानूनों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

> "हम किसी मानवीय कानून के वशीभूत हो टैक्स देने अथवा ट्रैफिक के नियमों से बचने का प्रयत्न कर सकते हैं। इससे कोई बहुत बड़ा पहाड़ नहीं टूटेगा। हम संसद या ऐसी महत्त्वपूर्ण जगह पर आम आदमी के प्रवेश को तो मानवीय कानून बनाकर रोक सकते हैं पर कोई कानून बनाकर निर्दोष व्यक्तियों की साँसें नहीं रोक सकते। हम उसे जीवन या परिवार चलाने के प्राकृतिक अधिकारों से वंचित करने की सोच भी नहीं सकते हैं। कोई भी राज्य मानवीय नियम लागू कर घर बनाने, आने-जाने जैसे संसाधनों को विनियमित कर सकता है पर वह उसे विवाह करने या घर बसाने से नहीं रोक सकता। यदि वह किसी व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक विचार रखने, सामाजिक सुरक्षा पाने, मतदान करने तथा सरकार में भाग लेने जैसी प्रक्रियाओं से रोकता है तो वह प्राकृतिक कानूनों का उल्लंघन कर रहा होता है और ऐसा करना सभ्य समाज के लिये अस्वीकार्य है। भारत जैसे देश जहाँ अभी अधिकारों को पूरी तरह लागू नहीं किया जा सका है, वहाँ भी आधार के मुद्दे पर लोगों के प्राकृतिक अधिकारों को सरकारी इरादों पर वरीयता दी गई है।"

अंग्रेज़ी न्यायशास्त्र में भी भगवान व प्रकृति के कानून के सर्वोच्च महत्त्व पर ज़ोर दिया गया। फोर्टस्केव, एलिस सैंडोज जैसे विधिवेत्ताओं ने इस अवधारणा को आगे बढ़ाया। ब्रिटिश विधिशास्त्री एडवर्ड कोक लिखते हैं कि "प्रकृति ने कानून का उद्देश्य निर्धारित किया और कानून किसी एक व्यक्ति के कारण या इच्छा से श्रेष्ठ था।" तेरहवीं शताब्दी तक माना जाने लगा था कि प्रकृति का नियम सभी कानूनों का आधार है। ह्यूगो ग्रोरियस जैसे विधिशास्त्री ने दृढ़तापूर्वक लिखा कि "एक सर्वव्यापी सामान्य इच्छा भी प्राकृतिक कानून को बदल या नष्ट नहीं कर सकती है।" शमूएल पुंफेफोर्ड ने प्राकृतिक कानूनों को धार्मिक नींव दी और इन्हें अपने अंतर्राष्ट्रीय कानून की अवधारणाओं में प्रमुख स्थान दिया। थॉमस जैफरसन ने अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में स्वतंत्रता के

1 स्त्री-पुरुष के समान सरोकारों को शामिल किये बिना विकास संकटग्रस्त है।

"एक दिन औरत का दिन होगा
एक दिन वह खिलाएगी दूध से सनी रोटियाँ
दुनिया के सारे बच्चों को
उसकी हँसी में होगी सिर्फ हँसी और कुछ नहीं होगा
वह स्थगित कर देगी सारे युद्ध, सारे धर्म
वह ऐतबार का पाठ पढ़ाएगी।"

प्राचीन काल से ही (जब से पशुधन से संपत्ति संग्रहण का प्रचलन हुआ) पितृसत्ता का ज़ोर चला आ रहा है। हालाँकि प्रारंभिक मानव समाज मातृसत्तात्मक था, उसके पर्याप्त साक्ष्य जगह-जगह मिलते रहते हैं। समाज, धर्म, आर्थिक व्यवहार, राजनीति; हरसंभव भूमिकाओं में स्त्री को हटाकर उसे घर-परिवार व प्रजनन तक सीमित रखने की कोशिश चलती रही है। समय-समय पर इसके अपवाद भी मिलते रहे हैं पर विभिन्न कालखंडों में कोई स्वर्ण युग स्त्री का भी है, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। आधुनिक काल में जाकर इस आपराधिक जड़ता को तोड़ने की कोशिश शुरू हुई। स्त्री-पुरुष असमानता और लिंग-भेद के समापन का विचार एक आधुनिक विचार है। ओलिम्प डी गाउसेज (Olympe de Gouges) ने मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा की तर्ज़ पर 'स्त्रियों और स्त्री नागरिकों के अधिकारों की घोषणा' तैयार की, जिसका प्रकाशन 1791 में हुआ और उसे फ्राँस की राष्ट्रीय असेंबली के समक्ष प्रस्तुत भी किया गया, पर कुछ खास प्रगति नहीं हो पाई। इस दौर में स्त्री आंदोलन का सबसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ मेरी वोल्सटनक्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) की पुस्तक 'स्त्री अधिकारों का प्रतिपालन' (A Vindication of the Rights of Women) है, जिसका प्रकाशन 1792 में हुआ। इसे स्त्री-विमर्श और उसके सरोकारों की बहुत महत्त्वपूर्ण पहल माना जाता है। जुलाई 1848 में न्यूयॉर्क में एलिजाबेथ कैडी स्टैंटन (Alizabeth Cady Stanton) और लुक्रेसिया मोट (Lucretia Mott) की अगुआई में पहला स्त्री अधिकार सम्मेलन हुआ, जिसमें उन्होंने स्त्रियों के लिये मताधिकार सहित पूर्ण कानूनी समानता, पूर्ण शैक्षिक और व्यावसायिक अवसर, समान मज़दूरी और समान मुआवज़े की मांग उठाई। फिर यह आंदोलन तेज़ी से यूरोप तक जा पहुँचा और आज यह काफी महत्त्वपूर्ण स्थिति में पहुँच चुका है। फिर भी ऐसा बहुत कुछ है जो किया जाना शेष है, क्योंकि अभी भी विकास की प्रक्रिया में स्त्री व पुरुष सरोकारों को समान स्थान प्राप्त नहीं है तथा दुनिया की ऐसी तमाम जगहें हैं, जहाँ अभी भी औरतों को पुरुष की अधीनस्थ की तरह रखने पर ज़ोर दिया जाता है। दोनों के बीच भेदभाव किया जाता है। यह भेदभाव सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, पारिवारिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक, हर स्तर पर होता है। जब तक इस तरह का भेदभाव होता रहेगा तब तक विकास संकटग्रस्त रहेगा।

एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि क्या विकास के संदर्भ में स्त्री-पुरुष के सरोकारों में कुछ भिन्नता होती भी है या नहीं? या फिर मामला केवल सशक्तिकरण का ही है? सामान्य तौर पर तो यही लगता है कि विकास के सभी उपादानों की स्त्री-पुरुष दोनों को ज़रूरत है। व्यवस्था या तंत्र को बस यह देखना है कि वह लिंग-भेद न करे। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, भोजन, सुरक्षा, आवास आदि की तो स्त्री व पुरुष दोनों को ज़रूरत है, फिर अलग सरोकारों की बात कहाँ से आई? एक सामान्य प्रश्न उठ सकता है, पर वास्तव में यह मुद्दे का सरलीकरण होगा। स्त्री और पुरुष की शारीरिक व सामाजिक स्थिति में काफी फर्क है। स्त्री को हर महीने माहवारी होती है, उसे 9 महीने गर्भ धारण करना होता है। वह रात में, अकेले होने की स्थिति में तथा अनजान जगहों पर असुरक्षित महसूस करती है। अतः स्त्रियों को लिंग समानता के साथ लिंग विशिष्टता को भी अपने विकास के सरोकारों में शामिल कराने की जद्दोजहद करनी पड़ी।

1 फुर्तीला, किंतु संतुलित व्यक्ति ही दौड़ में विजयी होता है।

वैश्विक स्तर पर तीव्र विकास की होड़ चल पड़ी है, ऐसे में संतुलन बनाए रखना भी उतना ही ज़रूरी है क्योंकि उसके बिना इस दौड़ में विजयी होना असंभव है। इतिहास हमारे सामने ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत करता है जिनमें संतुलन के बिना तीव्र विकास की संकल्पना ध्वस्त होती पाई गई है। हम याद करें चीन की 'ग्रेट लीप फॉरवर्ड पॉलिसी' को जिसके तहत माओ जेदांग ने 1958 से 1961 के बीच चीन की अर्थव्यवस्था को शीघ्रता से परिवर्तित करने हेतु तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया पर संतुलन के अभाव ने चीन को 'ग्रेट चीनी अकाल' की ओर धकेल दिया। इसी तरह 1997 में एशियन टाइगर्स (सिंगापुर, ताइवान, हांगकांग, साउथ कोरिया) के वृहद् आर्थिक संकट का कारण आर्थिक नीति में संतुलन न बना पाना था। हाल के अमेरिकी व ग्रीस संकट के पीछे भी तीव्रता के साथ संतुलन न बना पाना ही ज़िम्मेदार कारक रहा है।

अभी कितने दिन ही हुए जब तीन साल के सीरियन बच्चे एलेन कुर्दी का शव बोदरूम के निकट भूमध्यसागर के तट पर मिला; और दो दशक पूर्व चलें तो सूडान के उस बच्चे जिसकी मौत के इंतज़ार में गिद्ध नज़र गड़ाए हुए हैं एवं इस घटना की तस्वीर उतारने वाले पुलित्जर पुरस्कार प्राप्त फोटोग्राफर केविन कार्टर ने किन परिस्थितियों में आत्महत्या की होगी इससे हम सभी वाकिफ हैं। दरअसल, पूरे विश्व में तीव्र विकास की होड़ चल पड़ी है, पर संतुलन के नितांत अभाव ने पूरे विश्व को दो भागों में बाँटने का काम किया है। अमेरिका एवं सोवियत रूस ने अपने तीव्र विकास की प्रतिस्पर्द्धा में शीत युद्ध के दौरान पश्चिमी एशिया, अफगानिस्तान आदि की आंतरिक नीतियों में हस्तक्षेप किया एवं आज तक पश्चिमी हस्तक्षेपों का असर इन क्षेत्रों में हलचल के तौर पर दिख रहा है।

दरअसल, फुर्तीला किंतु संतुलित व्यक्ति राष्ट्र या संगठन ही दौड़ में वास्तविक रूप से विजयी होता है। सोवियत रूस में देखें तो मिखाइल गोर्बाचेव ने ग्लासनोस्त पेरेस्त्रोइका एवं उस्कोरेनी के माध्यम से अचानक तीव्र परिवर्तन लाने की कोशिश की, पर संतुलन नहीं बना पाने से सोवियत संघ का विघटन हो गया। बात दक्षिण एशिया की करें तो हाल ही में नेपाल में विभिन्न पहाड़ी एवं वामपंथी नेताओं ने जल्दबाज़ी करते हुए नेपाल में आपदा-पश्चात् पृष्ठभूमि में बिना मधेश आकांक्षा को ध्यान में रखे संविधान को लागू कर दिया; परिणाम हमारे सामने है। इसी तरह श्रीलंका, पाकिस्तान आदि में नृजातीय संघर्षों के साथ-साथ राष्ट्र के विकास में भी खास समुदायों की उपेक्षा करना केंद्र में रहा है।

वास्तव में नई वैश्विक परिस्थितियों में तीव्र विकास एवं संतुलन के अभाव ने आर्थिक संकट, आतंकवाद में वृद्धि, नृजातीय संघर्षों में वृद्धि, पर्यावरणीय आपदाओं की वृद्धि में महती भूमिका निभाई है। बात भारत की करें तो ऐतिहासिक कालक्रम में सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के पीछे ज़िम्मेवार कारक यह रहा कि हड़प्पावासियों ने अंधाधुंध विकास की होड़ में संतुलन बनाने पर ध्यान नहीं दिया, फलस्वरूप इतनी महान सभ्यता का पतन हो गया।

इसी तरह भारत में जिन विभिन्न शासकों ने अपनी नीतियों में तीव्र विकास के साथ संतुलन बनाया है, उन्हें आज तक उच्च कोटि की श्रेणी में याद किया जाता है क्योंकि उनकी विकासात्मक नीतियों में सभी धर्म, संप्रदाय के लोगों को भी ध्यान में रखा गया था, यथा- सम्राट अशोक, अकबर, जैनुल आबिदीन आदि।

1 क्या मानकीकृत परीक्षण शैक्षिक योग्यता या प्रगति का बढ़िया माप है?

अल्बर्ट आइंस्टीन आज तक के सबसे महान वैज्ञानिकों में से एक माने जाते हैं, पर कम लोग ही जानते हैं कि वे अपने शुरुआती जीवन की कई परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हो जाते थे। ए.पी.जे. अब्दुल कलाम पायलट की परीक्षा में विफल हो गए थे, किंतु भारत के मिसाइल कार्यक्रम के 'भीष्म पितामह' वही साबित हुए। स्टीफन हॉकिंग को विज्ञान की पढ़ाई में कमज़ोर माना गया पर आज वे दुनिया के सबसे महान वैज्ञानिकों में शामिल हैं। बिल गेट्स को उनके परिवार के लोग अज़ीबो-गरीब बातें सोचने के कारण मनोचिकित्सक से मिलवाते थे जबकि आज की दुनिया माइक्रोसॉफ्ट के बिना ज्ञान के रास्ते पर दो कदम भी नहीं चल सकती है। इसके अलावा भी ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जिनमें किसी व्यक्ति को मानकीकृत परीक्षण में अयोग्य ठहराया गया किंतु उसने अपनी काबिलियत से उन परीक्षणों को ही असफल साबित कर दिया। इन उदाहरणों के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर विचार करना अत्यंत रोचक हो जाता है कि क्या मानकीकृत परीक्षण शैक्षिक योग्यता या प्रगति का बढ़िया माप है?

समुचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये ज़रूरी है कि पहले विषय के सटीक अर्थ का निर्धारण कर लिया जाए। मानकीकृत परीक्षण से आशय उन परीक्षाओं से है जो किसी विद्यार्थी की अभिवृत्ति (Aptitude) या शिक्षा के क्षेत्र में उसके द्वारा किये गए निष्पादन की जाँच के लिये तैयार की जाती हैं; उदाहरण के लिये, भारत में 10वीं तथा 12वीं कक्षा में होने वाली बोर्ड परीक्षाएँ विद्यार्थियों की प्रगति को मापने के उपाय हैं। इसी तरह, मेडिकल या इंजीनियरिंग की प्रवेश परीक्षाएँ यह जानने के परीक्षण हैं कि किसी विद्यार्थी की इन क्षेत्रों में अनुकूल अभिवृत्ति है या नहीं? प्रबंधन के क्षेत्र में होने वाली कैट (कॉमन ऐडमिशन टेस्ट) या मैट (मैनेजमेंट ऐडमिशन टेस्ट) जैसी परीक्षाएँ, अनुसंधान और शिक्षण के लिये नेट/सीटेट; नौकरशाही के लिये सीसैट और खेलों के लिये सैट (स्पोर्ट्स एप्टिट्यूड टेस्ट) जैसे मानकीकृत परीक्षण इसी बात का अनुमान करते हैं कि कोई अभ्यर्थी इस क्षेत्र-विशेष में कितनी दूर तक सफल हो सकेगा।

हमारे सामने विचार का मुद्दा यह है कि ये मानकीकृत परीक्षण किसी व्यक्ति की शैक्षिक योग्यता या उसकी प्रगति के स्तर का निर्धारण करने के लिये उत्कृष्ट उपाय हैं या नहीं? दरअसल, अमेरिका जैसे विकसित देशों में 20वीं सदी की शुरुआत से ही ऐसे परीक्षणों की परंपरा शुरू हुई थी और आज वह काफी उन्नत रूप में चल रही है। पहले ऐसे परीक्षणों में सिर्फ बौद्धिक योग्यता को मापा जाता था और गणित, तर्कशक्ति तथा भाषा बोध जैसी बुनियादी तार्किक क्षमताओं की परख की जाती थी। धीरे-धीरे इन देशों के मनोवैज्ञानिक समझ गए कि व्यक्ति की प्रगति इन एक-दो कारकों पर ही निर्भर नहीं करती, कई कारक मिलकर उसकी योग्यता या क्षमता को निर्धारित करते हैं। इन खोजों के बाद परीक्षणों की प्रकृति भी बदली, जैसे- I.Q. (बुद्धि लब्धि) के परीक्षण में कई अन्य कारक शामिल होते गए। 1990 के दशक में डेनियल गोलमेन जैसे मनोवैज्ञानिकों ने भावनात्मक योग्यता का मानकीकृत परीक्षण पेश किया और दावा किया कि सामाजिक व्यवहार से जुड़े क्षेत्रों में व्यक्ति की प्रगति या सफलता का सही पैमाना यही है।

निचोड़ यह है कि मानकीकृत परीक्षण के क्षेत्र में मनोविज्ञान काफी आगे बढ़ चुका है। किसी क्षेत्र में सफलता के लिये व्यक्ति में कौन-से गुण किस अनुपात में होने चाहियें, इसका खाका तैयार किया जा चुका है और इसी के आधार पर विभिन्न मानकीकृत परीक्षण तय किये जाते हैं। जैसे यदि कोई लेखक बनना चाहे तो उसकी भाषायी योग्यता, अमूर्त चिंतन की क्षमता, कल्पना क्षमता तथा अवलोकन क्षमता का संयोजन देखा जाता है। इसके विपरीत, यदि कोई सिविल इंजीनियर बनना चाहता है तो गणित, तर्कशक्ति, स्थानिक बुद्धिमत्ता तथा आकृतियों से जुड़ी बुद्धिमत्ता का परीक्षण किया जाता है।

ये परीक्षण मोटे तौर पर सफल हैं, इसका पहला प्रमाण तो यही है कि अमेरिका और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में उच्च शिक्षा में सभी प्रवेश ऐसे परीक्षणों के आधार पर ही होते हैं। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इन देशों के नागरिक नि:संदेह काफी आगे हैं और नोबेल पुरस्कारों की सूची देखकर भी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। दूसरा तर्क यह है कि जब हम जानते हैं कि हर बच्चा अलग-अलग प्रतिभा से युक्त होता है तो हमें उसके बचपन में ही उसकी योग्यताओं का अनुमान करने का प्रयास क्यों नहीं करना चाहिये? संभव है कि यह अनुमान 100% सही न निकले पर अगर यह तीन-चौथाई भी सच है तो पर्याप्त है क्योंकि हम बच्चों को उन क्षेत्रों में भेज पा रहे हैं जिनके लिये वे बने हैं। प्लेटो से लेकर सार्त्र तक और कृष्ण से लेकर महात्मा गांधी तक जाने कितने विचारकों ने व्यक्ति को अपने स्वधर्म पर चलने की सलाह दी है; पर दिक्कत यह है कि स्वधर्म का ज्ञान होते-होते

1 अच्छा-बुरा स्वयं में कुछ नहीं, हमारे विचार ही हमें अच्छा-बुरा बनाते हैं।

UPSC 2003

संत कवि तुलसीदास ने लिखा है-

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।"

यानी जैसी जिसकी सोच होगी वैसा ही वह अपने प्रभु में देखेगा। एक भला आदमी अपने आराध्य में अच्छे गुण तलाशेगा और उनकी पूजा करेगा। इसके विपरीत एक बुरा आदमी अपने मुताबिक गुण अपने प्रभु में देखना पसंद करेगा। कुछ वैसा ही जैसे शरद के पूर्व जब आसमान में बादल तमाम तरह की आकृतियाँ बनाते-बिगाड़ते हैं, तब मनुष्य इन बादलों में अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप आकार देखता है। अच्छा या बुरा होना तो मनुष्य की मानसिकता है। एक अच्छा शोध भी अगर ग़लत हाथों में पड़ जाए तो वह उससे विनाश की ही बात सोचेगा और अच्छे हाथों में पड़ जाए तो वह उसका सकारात्मक और रचनात्मक इस्तेमाल करेगा। परमाणु ऊर्जा मनुष्य जाति के लिये जितनी खतरनाक है उतनी ही उपयोगी भी। अब यह इसके उपयोग करने के रूप पर निर्भर करता है। यदि इसका उपयोग परमाणु बम निर्माण में करें तो यह विध्वंसक परिणाम दे सकती है वहीं यदि इसे विद्युत ऊर्जा निर्माण में प्रयुक्त किया जाए तो ऊर्जा संकट का समाधान सिद्ध हो सकती है।

हिंसक वृत्ति का आदमी अपनी वृत्ति का त्याग नहीं कर पाता और अपने स्वभाव के अनुरूप वह हर आविष्कार में यही ढूंढता है। इसीलिये महात्मा गांधी ने स्वाधीनता की लड़ाई लड़ते वक्त अहिंसा पर ज़ोर दिया था। अहिंसा का मतलब सिर्फ जीव के प्रति दया नहीं बल्कि अपने बुरे स्वभाव पर भी काबू पाना है। इसे यूँ कहा जा सकता है कि हिंसा का अभाव ही अहिंसा है। किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है और यह अहिंसा तब ही आएगी जब मनुष्य के स्वभाव में ही हिंसा का अभाव होगा। सवाल यह है कि हिंसा का भाव मनुष्य के मन में आता ही क्यों है? हिंसा का मूल स्रोत है- राग-द्वेष और मनुष्य की अनियंत्रित वासनाएँ। वासना यानी कि जगत और प्रकृति से अपरिमित सुख पाने की लालसा और इस चक्कर में वह प्रकृति का दोहन करता है और जगत की हर चीज़ पर नियंत्रण पाना चाहता है। इस वजह से उसके अंदर दूसरों से छीनने और हरण की ललक बढ़ती है। पशु की वासनाएँ सीमित हैं। वह बस आहार, निद्रा और काम तक सीमित है इसलिये उसकी वासनाएँ बस प्राकृतिक हैं और उसकी मांग भी।

हालाँकि एक बार अगर मनुष्य सहज जीवन या अच्छे विचारों वाला जीवन अपना ले तो उसे फिर कभी बुरे मार्ग पर चलने का प्रयास नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि बुरे मार्ग पर चलने के लिये निरंतर बुरा सोचना पड़ता है जबकि अच्छे और सहज विचारों के मार्ग पर चलने के लिये सायास उपाय नहीं करने पड़ते। लेकिन स्वभाव की इस वृत्ति पर नियंत्रण पाना आसान नहीं। पहले तो मनुष्य को अच्छे गुणों के लिये प्रयास करना पड़ेगा और एक बार आपके अंदर ये गुण आ गए तो फिर कभी उस मार्ग पर जाने की ओर प्रवृत्ति ही नहीं होगी। लेकिन इस अच्छे मार्ग पर चलने के लिये साहस ज़रूर चाहिये और वह साहस है अंतर्मन का। जिसमें निरंतर अच्छे और बुरे विचारों के बीच द्वंद्व में अच्छे की ओर अपनी प्रवृत्ति बढ़ानी होगी। तब हर शोध और हर आविष्कार के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक हो जाएगा और विचार रचनात्मक।

खंड–5

राजनीतिक और प्रशासनिक विषयों पर आधारित निबंध

1

अफ्स्पाः औचित्य एवं व्यवहार्यता।

"जनरल तुम्हारा टैंक एक मज़बूत वाहन है
वह नष्ट कर डालता है वन को
और रौंद डालता है सैकड़ों आदमियों को
लेकिन उसमें एक खराबी है
इसके लिये एक चालक चाहिये
× × × × ×
जनरल आदमी कितना उपयोगी है
वह उड़ सकता है और मार सकता है
लेकिन उसमें एक खराबी है
वह सोच सकता है"

यही सोच है जिसके कारण सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (अफ्स्पा) का नाम सुनते ही नाक में पाईप लगे घुंघराले बालों वाली एक लड़की की छवि उभरती है जिसने लगभग 16 साल तक इस कानून को हटाने के लिये अनशन किया। यही वजह है कि अफ्स्पा का ज़िक्र आते ही हाथ में पत्थर लिये कश्मीरी युवकों का दृश्य उभरता है जो भारतीय फौजों को वहाँ से हटाने की मांग करते हैं। तो क्या अफ्स्पा कानून सच में इतना बुरा है कि इसे जहाँ भी लागू किया जाता है वहाँ इसका विरोध शुरू हो जाता है? विरोध के बावजूद भी भारत सरकार की आखिर ऐसी क्या मजबूरी रही है कि जब से यह कानून बना है तब से उत्तर-पूर्व समेत देश के किसी-न-किसी हिस्से में यह विद्यमान ज़रूर रहा है। क्या भारत की एकता और अखंडता सैनिकों को विशेषाधिकार प्रदान कर ही कायम रखी जा सकती है? क्या मानवाधिकार को कुचलकर क्षेत्रीय एकता बरकरार रखने की चाहत एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिये जायज़ हो सकता है? आखिर उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में कुछ लोगों की सोच इतनी विपरीत क्यों है कि वो सुरक्षा बलों पर ईंट-पत्थरों की बारिश करते रहते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर ही अफ्स्पा कानून के औचित्य एवं व्यवहार्यता को सिद्ध करेगा।

अफ्स्पा यानी 'आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर एक्ट' एक फौजी कानून है जिसे 'डिस्टर्ब्ड' क्षेत्रों में लागू किया जाता है। यह कानून सुरक्षाबलों और सेना को कुछ विशेषाधिकार देता है, जो आमतौर पर सिविल कानूनों में वैध नहीं माने जाते हैं। सबसे पहले ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ो आंदोलन को कुचलने के लिये अफ्स्पा को 1942 में अध्यादेश के रूप में पारित किया था। आगे भारत में संविधान की बहाली के बाद से ही पूर्वोत्तर राज्यों में बढ़ रहे अलगाववाद, हिंसा और विदेशी आक्रमणों से प्रतिरक्षा के लिये नागालैंड, मणिपुर, असम में वर्ष 1958 में अफ्स्पा लागू किया गया। वर्ष 1972 में कुछ संशोधनों के साथ इसे लगभग सारे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में लागू कर दिया गया और नब्बे के दशक में पंजाब और कश्मीर में भी राष्ट्रविरोधी तत्त्वों को नष्ट करने के लिये अफ्स्पा के तहत सेना को विशेष अधिकार प्रदान किये गए। कहने का तात्पर्य यह कि अफ्स्पा सुरक्षा बलों को प्राप्त कुछ विशेष अधिकार हैं जिसके द्वारा वह अशांत व उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में शांति बहाली का काम करता है। अतः प्रश्न उठता है कि वह विशेषाधिकार है क्या?

जिस क्षेत्र में यह कानून लागू किया जाता है वहाँ सुरक्षा बलों को यह अधिकार होता है कि वे ज़रूरी होने पर कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु चेतावनी देने के साथ गोलीबारी भी कर सकते हैं। भले ही इस घटनाक्रम में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए किंतु दोषी सैनिक को केंद्र सरकार की अनुमति के बिना जाँच के दायरे में नहीं लाया जा सकता है। यह विशेषाधिकार नहीं तो और क्या है कि

खंड–6

आर्थिक विषयों पर आधारित निबंध

1 क्या राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा देगी?

ज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में बौद्धिक संपदा और उससे जुड़े अधिकार बहुमूल्य कमोडिटीज़ बन गए हैं और इसीलिये वैश्विक स्तर पर उनके संरक्षण का जमकर प्रयास किया जा रहा है। वैश्वीकरण के कारण पिछले दो दशकों में विश्व भर में सीमापार लेन-देनों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियाँ दुनिया भर में विभिन्न स्थानों पर अपनी वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार कर रही हैं, लेकिन समस्या यह है कि वर्तमान में विश्व के विभिन्न देशों में बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा से जुड़े कानूनों को लेकर मत-भिन्नता है। ऐसी स्थिति में, वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था में बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती बन गई है। आज जहाँ विश्व की सभी विकसित अर्थव्यवस्थाएँ बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित कानूनों के निर्माण की ज़ोरदार ढंग से पैरवी करती हैं, वहीं विश्व व्यापार संगठन भी अपने सदस्य देशों से 'ट्रिप्स' समझौते के अनुसार बौद्धिक संपदा अधिकारों के कानूनी संरक्षण और प्रवर्तन के लिये न्यूनतम मानकों को स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देता है।

ऐसे वैश्विक परिदृश्य में भारत ने मई 2016 में अपनी 'राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति' की घोषणा कर बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण की मांग करती अर्थव्यवस्थाओं के साथ सहयोग और समायोजन की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया है। भारत सरकार का कहना है कि नई बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भारत में रचनात्मक और अभिनव ऊर्जा के भण्डार को प्रोत्साहन देने, शोध और विकास को बढ़ावा तथा 'मेक इन इंडिया', 'स्टार्ट अप इंडिया' और 'डिजिटल इंडिया' जैसी योजनाओं को मज़बूती प्रदान करने के उद्देश्य से लाई गई है। साथ ही, इस नीति से भारत को 'ट्रांस-पैसिफिक पार्टनरशिप' जैसे बड़े क्षेत्रीय व्यापार समझौतों तथा विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं से संबंध स्थापित करने में आ रही चुनौतियों को हल करने में भी मदद मिलेगी। प्रश्न यह है कि क्या सरकार का दावा महज़ एक अंदाज़ा ही है या सचमुच यह नीति अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक होगी? एक प्रश्न यह भी बनता है कि आखिर वे कौन-सी स्थितियाँ थीं जिससे भारत सरकार को नई राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति की घोषणा करनी पड़ी? इन प्रश्नों का जवाब पाने के लिये हमें नीति संबंधी एक वृहद् विश्लेषण करना होगा।

सरकार का कहना है कि राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति 'रचनात्मक भारत: अभिनव भारत' के लिये कार्य करेगी। बौद्धिक संपदा अधिकारों के क्षेत्र में समय-समय पर आने वाले बदलावों के मद्देनज़र प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद इस नीति की समीक्षा की जाएगी। यह नीति भारतीय सिनेमेटोग्राफ अधिनियम सहित विभिन्न बौद्धिक संपदा अधिकार संबंधी कानूनों को अद्यतन करेगी तथा उनमें मौजूद विसंगतियों और असंगतताओं को दूर करेगी। इस नीति में बौद्धिक संपदाधारक किंतु कम सशक्त समूहों, जैसे- बुनकरों, किसानों और कारीगरों को वित्तीय सहायता देने के लिये ग्रामीण बैंकों या सहकारी बैंकों जैसी वित्तीय संस्थाओं द्वारा बौद्धिक संपदा के अनुकूल ऋण प्रदान किये जाने का भी उल्लेख है। नई नीति के अनुसार, मार्च 2017 तक ट्रेडमार्क की जाँच और रजिस्ट्रेशन प्रक्रिया की समयावधि को वर्तमान के 8 माह से घटाकर एक माह तक करने का प्रयास किया जाएगा। इस कार्य के लिये सरकार 100 नए परीक्षकों की नियुक्ति कर चुकी है। इससे भारत के चारों पेटेंट कार्यालयों में लंबित 2ए37000 आवेदनों के निपटारे में मदद मिलेगी। इस नीति द्वारा सरकार का प्रयास बौद्धिक संपदा अधिकारों के उल्लंघनों को रोककर बौद्धिक संपदा

खंड–7

पारिस्थितिकीय व भौगोलिक विषयों पर आधारित निबंध

1 क्या सृष्टि का विनाश लगातार बढ़ते प्रदूषण के कारण होगा?

"धरती को
माँ समझना
बस, माँ समझना ही है
उर्वरता को महसूस करना ही है
अपने को तलाशना भर ही है।"

भारत और अन्य प्राचीन सभ्यताओं में पृथ्वी को माँ समझा जाता था, उर्वरता एवं हरे-भरे वन के लिये मातृ-पूजात्मक विधान होते थे। प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करके मानव अपने को सुरक्षित समझता था, अपना वजूद तलाशता था, इसलिये धरती, जल, वन, पशुओं के प्रति एक संरक्षणकारी भावना हावी रहती थी। भारत की अनेक परंपराएँ एवं संस्कार इसी प्राकृतिक संरक्षण पर आधारित थे। वैदिक साहित्य में ही ऐसे कई आह्वान दिख जाते हैं- *'ॐ यन्तु नद्यो वर्षन्तु पर्जन्या, सुपिप्पला औषधयो भवन्तु।'* पृथ्वी पर जीवन, जल, कार्बन तथा ऊष्मा के एक खास संतुलन के कारण संभव हुआ। इसमें कोई भी संतुलन गड़बड़ाने से जीवन पर खतरा हो जाएगा। इन तीनों के संतुलन के अतिरिक्त मिट्टी एवं वायु भी जीवन के लिये अपरिहार्य चीज़ें हैं। इसलिये हर धर्म, समुदाय, परंपरा में प्रकृति के संरक्षण की चेतना मौजूद थी, हालाँकि इस चेतना का संबंध इस बात से था कि प्रकृति का यह साहचर्य, यह उत्पादन, उसकी यह देन मानव के लिये बराबर सुलभ रहे। पृथ्वी का अंधाधुंध दोहन इस कदर होगा कि जीवन पर ही संकट बन आएगा; यह बात ही तब कल्पनातीत थी। पर औद्योगिक मानव के उत्पन्न होने के बाद जब मानव ने प्रकृति पर नियंत्रण करना प्रारंभ किया और प्रकृति को अपना नियंता समझने के बजाय उसको अपना दास समझने लगा तब उसकी जीवनशैली ने हवा, पानी, मिट्टी तथा जीवन के प्रत्येक पहलू को दूषित कर दिया, इस हद तक कि जीवन के विनाश का संकट उत्पन्न हो गया है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी आधुनिक सभ्यता की संभावित विडंबनाओं से परिचित थे इसलिये उन्होंने कहा था *"प्रकृति हमारी ज़रूरतों को पूरा कर सकती है, लालचों को नहीं।"* उनके समकालीन महान उर्दू शायर अल्लामा इकबाल ने भी लिखा था-

"जिसने सूरज की शुआओं को गिरफ्तार किया
ज़िंदगी की रबे तारीख सहर कर न सके।"

(जिन्होंने सूरज की किरणों को बंदी बना लिया है, वे जीवन की अंधेरी रात को सवेरा नहीं दे पा रहे हैं।)

गांधी जी की तरह इकबाल भी पश्चिमी सभ्यता को भयावह रूप से आत्मघाती मानते थे। उनका इशारा भौतिक दुष्परिणामों के साथ नैतिक दुष्परिणामों की तरफ भी था। उनका मानना था कि इंसानी हवस का यह खतरनाक तरीका धरती को ही खा जाएगा। वे गांधी जी के 'हिंद स्वराज' (1909) के आने के पहले ही 1907 में अपनी एक चर्चित गज़ल में पश्चिम की इस प्रवृत्ति के बारे में दो टूक ढंग से सावधान करते हैं-

"तुम्हारी तहज़ीब अपने खंज़र से आप ही खुदकुशी करेगी।
जो शाख-ए-नाज़ुक पे आशियाना बनेगा नापाएदार होगा।"

वस्तुतः प्रदूषण एक समस्या के रूप में तब शुरू हुआ जब भाप के इंजन के प्रयोग के पश्चात् पहली औद्योगिक क्रांति ने जन्म लिया। धीरे-धीरे दूसरी औद्योगिक क्रांति तक आते-आते पूरी दुनिया में व्यापक उत्पादन प्रणाली का ज़ोर हो गया। दुनिया की

खंड–8

अंतर्राष्ट्रीय व वैश्विक विषयों पर आधारित निबंध

1 एक आदर्श विश्व–व्यवस्था की मेरी कल्पना।

UPSC 2001

एक आदर्श विश्व–व्यवस्था की कल्पना में अनेक विचार प्रस्तुत होते रहे हैं। भारतीय मनीषियों का 'वसुधैव कुटुंबकम्' व 'सर्वे भवन्तु सुखिन:', प्लेटो के रिपब्लिक का 'आइडियल स्टेट', थॉमस मोर का 'यूटोपिया' तथा मार्क्स-एंजिल्स-लेनिन का 'साम्यवादी–समाजवादी विश्व' का सपना आदि इसी कड़ी में उर्वरित होने वाले विचार हैं। इस संदर्भ में कल्पना के घोड़े आज भी दौड़ाए जा रहे हैं किंतु आदर्श विश्व–व्यवस्था की कामना अधूरी ही है। अत: प्रश्न उठता है कि आदर्शवादी कल्पना में विश्व–व्यवस्था की कैसी रूपरेखा हो जो महज़ स्वप्न नहीं बल्कि लागू किये जाने योग्य हो? इस हेतु सर्वप्रथम 'आदर्श' और 'कल्पना' के सह–संबंधों को जानना ज़रूरी है।

दरअसल, आदर्श एक श्रेष्ठतम अवस्था का द्योतक है। यह समाज का प्रतिमान होता है। यह सदा अनुकरणीय होता है। सही मायनों में आदर्श एक दुर्लभ लक्ष्य के समान है। परन्तु इस ओर अग्रसर होने का मतलब है एक सुचारू, श्रेष्ठ एवं हरेक दृष्टि से परिपूर्ण व्यवस्था की ओर बढ़ना। दूसरी ओर, कल्पना महज़ स्वप्नलोक ही नहीं बल्कि एक विचार प्रक्रिया भी है। अक्सर आदर्श को कल्पना के दायरे में देखा जाता है। आदर्श यदि समाज या व्यवस्था का प्रतिमान है तो कल्पना मन की उड़ान है। आदर्श यदि उत्तम, सर्वश्रेष्ठ व अनुकरणीय उदाहरण की स्तुति है तो कल्पना है नई बात, नई सोच की प्रस्तुति। इस प्रकार कल्पना एवं आदर्श में गहरा रिश्ता है। कल्पना से ही आदर्श फूटता है और आदर्श प्राप्ति की दिशा में प्रयत्नशील होने से ही यथार्थ की स्थापना होती है। इसलिये आदर्शवादी कल्पना बेहद सकारात्मक होती है, बस उसमें व्यावहारिकता का समावेशन ज़रूरी है। वसुधैव कुटुंबकम, आइडियल स्टेट या यूटोपियन समाजवाद आदि में कहीं–न–कहीं इसी व्यावहारिकता का लोप रहा जिस कारण ये फलीभूत नहीं हो पाए। अपनी कल्पना के मंदिर में रामराज्य की कामना करना तो आसान है किंतु इसे वास्तविकता के धरातल पर उतारना बहुत मुश्किल होता है। इसलिये एक आदर्श विश्व–व्यवस्था की मेरी कल्पना में महज़ आदर्श ही नहीं वरन् क्रूर यथार्थ भी शामिल है; अच्छाइयाँ हैं तो बुराइयाँ भी शामिल हैं तथा नैतिकता है तो व्यावहारिकता भी शामिल है। अत: वर्तमान वैश्विक व्यवस्था की चुनौतियों, विद्रूपताओं व संभावनाओं को परखते हुए राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक व पर्यावरणीय रूप से हमारी दुनिया कैसी होगी, इसी का रूपांकन हमारा अभीष्ट है।

राजनैतिक रूप से यदि विश्व को निहारें तो कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांशत: लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देश ही नज़र आते हैं। यह सराहनीय बात है कि अभी तक ज्ञात सभी शासन पद्धतियों में लोकतांत्रिक शासन पद्धति अपने कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद सर्वश्रेष्ठ है। यह जनता का, जनता के लिये तथा जनता के द्वारा शासन है। इसलिये दुनिया के जिन देशों में अभी भी राजतंत्र या तानाशाही शासन व्याप्त है वहाँ भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना, शासन में जन–भागीदारी बढ़ाने का अच्छा प्रयास होगा। इसके लिये नियमत: व कदाचारमुक्त चुनाव की गारंटी का ज़िम्मा सभी देशों की सरकारें लें तथा इसकी निगरानी हेतु एक वैधानिक विश्वव्यापी संस्था की स्थापना हो। इस प्रकार अखिल विश्व लोकतंत्रमय हो जाए और देशों के बीच आपसी सहयोग व भाईचारे में वृद्धि हो, यही एक आदर्श विश्व–व्यवस्था की मेरी कल्पना है।

सुरक्षा की परंपरागत धारणाओं में यह माना जाता है कि किसी देश की सुरक्षा को ज़्यादातर खतरा उसकी सीमा के बाहर से होता है। शीतयुद्धोत्तर काल से अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था एकतरफा हो गई है, इसलिये संघर्ष जारी है। परन्तु इस निर्मम मैदान में ऐसी कोई केंद्रीय ताकत नहीं है जो देशों के व्यवहार–बर्ताव पर अंकुश रखने में सक्षम हो। यहाँ यूएनओ की अक्षमता जगज़ाहिर है। सन्

खंड-9

विज्ञान-तकनीक से जुड़े विषयों पर आधारित निबंध

1 इंटरनेट पर 'निजता की सुरक्षा': एक बुनियादी चुनौती।

सुबह-सुबह समाचार-पत्र के पहले पन्ने पर मोटे-मोटे अक्षरों में यह लिखा दिख जाए कि इंटरनेट की शिकार महिला ने आत्महत्या की तो एक क्षण के लिये ही सही किसी भी सामान्य व्यक्ति (विशेषकर किशोरियों, युवतियों और महिलाओं) की देह सिहर उठेगी। यह समाचार कहीं-न-कहीं किसी व्यक्ति के निजी जीवन में इंटरनेट के माध्यम से किये जाने वाले हस्तक्षेप की ओर संकेत करता है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि आखिर इंटरनेट जैसे सुलभ संप्रेषण माध्यम के ज़रिये किसी व्यक्ति को निजी तौर पर नुकसान पहुँचाना कैसे संभव हुआ? यह सच है कि इंटरनेट ने हमारे दैनिक जीवन को सुविधाजनक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, लेकिन हर अच्छी चीज़ का एक अप्रिय पहलू भी होता है। इंटरनेट ने यूँ तो आम प्रयोक्ता के सामने कई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं लेकिन इंटरनेट प्रयोक्ताओं की निजता का हनन और उससे जुड़े अपराध वैश्विक स्तर पर बड़ी चिंता के विषय बन गए हैं। ये चुनौतियाँ काफी हद तक इंटरनेट की खुली प्रकृति के कारण उत्पन्न हुई हैं। हमें निरंतर सूचनाएँ देने और एक-दूसरे के निकट लाने की उसकी क्षमता का अपराधिक तत्त्वों के हाथों दुरुपयोग किया जाता है जो मासूम बच्चों और महिलाओं से लेकर सीधे-सादे नागरिकों तक को निशाना बनाने से नहीं चूकते।

इंटरनेट पर निजता के हनन की समस्या निरंतर गंभीर होती जा रही है। यह समस्या अब मात्र छोटे अपराधियों या शरारती तत्त्वों तक सीमित नहीं रह गई है बल्कि कुछ बड़ी कंपनियाँ भी अपने कारोबारी उद्देश्यों के लिये खुलेआम किसी व्यक्ति की निजता का हनन कर रही हैं। आज के बच्चे जिन समस्याओं को लेकर सर्वाधिक परेशान हैं, उनमें इंटरनेट के ज़रिये सताए जाने, छेड़खानी किये जाने, पीछा किये जाने, बदनाम किये जाने जैसी समस्याएँ प्रमुख हैं। दुनिया के बड़े-से-बड़े विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय साइबर बुलिंग, साइबर स्टॉकिंग, इंटरनेट ट्रॉलिंग, फिशिंग जैसे साइबर अपराधों से निपटने के लिये बड़ी मात्रा में समय, संसाधन और श्रम खर्च कर रहे हैं। यद्यपि ये समस्याएँ सिर्फ बच्चों और किशोरों तक सीमित नहीं हैं। इंटरनेट से जुड़ा कोई भी व्यक्ति गोपनीयता के परदे के पीछे छिपे दूसरे व्यक्ति द्वारा मानसिक प्रताड़ना का शिकार बनाया जा सकता है। हॉलीवुड और बॉलीवुड के बड़े-बड़े अभिनेता-अभिनेत्रियाँ तक 'साइबर बुलिंग' और 'साइबर स्टॉकिंग' से त्रस्त हैं। अनेक राजनेता भी इस तरह के अपराधों के शिकार हो चुके हैं। फेसबुक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी मार्क जुकरबर्ग भी साइबर स्टॉकिंग के शिकार रहे हैं।

ये स्थितियाँ दर्शाती हैं कि जो इंटरनेट हमें तत्क्षण विभिन्न जानकारियों से अवगत कराने, किसी कार्य विशेष को अतिशीघ्रता से संपन्न करने (जैसे-मेल भेजना, धनराशि हस्तांतरण आदि) में एक सहज विकल्प के रूप में प्रस्तुत होता है वह किसी भी व्यक्ति को सहजता से हानि पहुँचाने के लिये भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

डिजिटल माध्यमों के ज़रिये निशाना बनाने वाला व्यक्ति कोई भी हो सकता है; ज़रूरी नहीं कि हम उसे जानते ही हों। उदाहरण के लिये यदि हम किसी अनजान स्रोत से निःशुल्क सॉफ्टवेयर लेकर अपने कम्प्यूटर में उसे इन्सटॉल करें तो हो सकता है कि उसमें स्पाईवेयर (Spyware) प्रोग्राम भी डाल दिया गया हो, जो बिना हमारी जानकारी के हमारे कम्प्यूटर की सूचनादि को किसी तीसरे तक पहुँचाने के लिये प्रयुक्त किया जाए। वह पूरी तरह अनजान व्यक्ति भी हो सकता है या फिर ऐसा व्यक्ति जिससे हम प्रत्यक्ष रूप से कभी न मिले हों लेकिन सोशल नेटवर्किंग, मैसेजिंग प्लेटफॉर्मों आदि पर संपर्क में रहे हों। ऐसे ज़्यादातर मामलों का कारण ईर्ष्या, द्वेष, संबंध-विच्छेद, झगड़ा या फिर कोई मानसिक विकृति होती है। कुछ लोग तो मात्र मौज-मस्ती के लिये किसी

किसी-न-किसी रूप में प्रेम से जुड़े होते हैं। साइबर स्टॉकर से निपटने में निजी सावधानियाँ तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, इन्हें समुचित जवाब देना भी ज़रूरी है। अनेक बार पीड़ित लोग सब कुछ चुपचाप सहन करते रहते हैं। हालाँकि बहुत सी युवतियों ने पुलिस की मदद ली है या फिर स्वयं ही अपनी साइबर स्मार्टनेस का उदाहरण देते हुए अपराधियों को सबक सिखाया है।

भारत के आईटी कानून के तहत भी अनेक साइबर स्टॉकर्स को गिरफ्तार किया गया है। भारतीय दंड संहिता के कुछ प्रावधानों का ऐसे लोगों को सज़ा देने के लिये इस्तेमाल किया जा रहा है। बहरहाल, साइबर सुरक्षा के प्रथम स्तर के रूप में स्वयं कुछ सावधानियाँ भी बरतनी चाहियें।

इंटरनेट पर 'निजता की सुरक्षा' जैसी समस्या को चुनौती के रूप में स्वीकार करना आज की आवश्यकता हो गई है। वर्तमान समय में जबकि इंटरनेट का उपयोग करना कोई स्टेटस सिम्बल (Status Symbol) नहीं रह गया है और यह एक आवश्यकता का रूप धारण कर रहा है, ऐसे में साइबर सुरक्षा को महत्त्व देना स्वाभाविक है। यह 'निजता की सुरक्षा' के लिये कवच का कार्य कर सकता है। इसकी सफलता के लिये आवश्यक है कि सरकार इस कवच को विविध सशक्त कानूनी प्रावधानों के ज़रिये सुसज्जित करे। इसके अतिरिक्त, हम (आम जनता) जो कि अब फेसबुक, ट्विटर जैसे इंटरनेट मंचों का दैनंदिन प्रयोग कर रहे हैं, हमें भी हर क्षण सतर्क रहने की आवश्यकता है। अनचाहे मेल, अनजान फ्रेंड रिक्वेस्ट, निरर्थक विज्ञापनों आदि का त्वरित प्रत्युत्तर देने से बचना एक सार्थक कदम सिद्ध हो सकता है, लेकिन ऐसी गतिविधियों की बारंबारता होने पर पुलिस की मदद लेने से भी संकोच नहीं करना चाहिये। साथ ही, इंटरनेट पर जिन माध्यमों (फेसबुक, ईमेल अकाउंट, बैंक अकाउंट आदि) में लॉगइन, लॉगआउट के विकल्प रहते हैं, उनका निश्चित रूप से उपयोग किया जाना चाहिये। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि पासवर्ड जैसी गुप्त जानकारियाँ केवल अपने तक ही सीमित रखनी चाहियें। इस संदर्भ में एक प्रचलित उक्ति प्रासंगिक है कि *'अपनी सुरक्षा, अपने हाथ।'*

"साइबर स्टॉकिंग की घटनाओं का विश्लेषण करने पर पाया गया कि ऐसा करने वालों में से अधिकांश मामले किसी-न-किसी रूप में प्रेम से जुड़े होते हैं। साइबर स्टॉकर से निपटने में निजी सावधानियाँ तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, इन्हें समुचित जवाब देना भी ज़रूरी है। अनेक बार पीड़ित लोग सब कुछ चुपचाप सहन करते रहते हैं। हालाँकि बहुत सी युवतियों ने पुलिस की मदद ली है या फिर स्वयं ही अपनी साइबर स्मार्टनेस का उदाहरण देते हुए अपराधियों को सबक सिखाया है।"

निजता की सुरक्षा निजता के अधिकार का अंग है और निजता का अधिकार हमारे जीने के अधिकार से भी संबद्ध है। यदि कोई व्यक्ति या समूह किसी मंशा के साथ इसमें अनधिकृत भूमिका निभाने लगे तो यह सर्वथा अनुचित है। इंटरनेट पर विभिन्न मंचों के माध्यम से हम अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों के साथ संपर्क साधते हैं, उनसे बातचीत करते हैं; ऐसे में कोई भी यूँ ही हमारे निजी जीवन के कार्यकलाप में व्यवधान डालने का प्रयास करे तो इसे स्वीकारा नहीं जा सकता। अत: 'निजता की सुरक्षा' से सम्बद्ध इस बुनियादी चुनौती के समाधान के प्रति तत्पर रहना अपरिहार्य प्रतीत होता है। यह नहीं भूलना चाहिये कि 'निजता की सुरक्षा' न केवल किसी व्यक्ति की निजता को सम्मान देने से संबंधित है बल्कि आपसी संबंधों को भी एक निश्चित परिधि के अन्तर्गत लाने से सम्बद्ध है। तभी तो किसी कवि ने कहा है:

"दिल में छिपी जो बात, वो ज़ाहिर न कीजिये।
राज़ बे-परदा न हो, रुसवा न कीजिये।।
रिश्ता हो अपना कोई भी, हमराज़ ही रहो।
रिश्तों की बात है यही, न बदनाम कीजिये।।"

■■■

खंड–10

सामाजिक/सांस्कृतिक विषयों पर आधारित निबंध

1 दलित विमर्श : दशा और दिशा।

"समय मांगता है मुझसे हिसाब
पढ़े क्यों नहीं! नहीं है इसका जवाब, मेरे पास
तुमने अपनी वर्जनाओं से, काट ली थी मेरी जिह्वा
मेरे होंठ ही सिल दिये थे
मेरे कानों में, पिघला हुआ शीशा भी उड़ेल दिया था
तुम्हारी इस करनी पर
मेरी धमनियों में खौल रहा है बहता लहू
समय के साथ इसका, मैं दूंगा माकूल जवाब
मेरी जगह पढ़ेंगे मेरे बच्चे ज़रूर!"

दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के धातु 'दल्' से हुई है, जिसका अर्थ है– तोड़ना, कुचलना। संस्कृत शब्दकोशों में दलित शब्द का अर्थ है– दला गया, मर्दित, पीसा गया। मानक हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्दकोशों में दलित शब्द के लिये डिप्रेस्ड (Depressed) शब्द मिलता है। गांधी ने उन्हें ईश्वर का पुत्र यानी 'हरिजन' कहा, किंतु दलित राजनेताओं को इस शब्द में अपमान की बू आती थी, क्योंकि उन्हें लगता था कि यह शब्द ज़मीनी वास्तविकता को ढाँपना चाह रहा है, अत: धीरे-धीरे हरिजन शब्द का प्रयोग बंद हो गया। संविधान में दलित समुदाय के लिये अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया गया, पर दलित आंदोलन से जुड़े लोग गैर-सवर्ण सभी जातियों को दलितों के तहत परिगणित करते हैं, जिनमें अन्य पिछड़े वर्ग व आदिवासी समुदाय भी शामिल हैं। दलितों के सबसे महत्त्वपूर्ण विचारक डॉ. अम्बेडकर का भी यही मानना था कि भारत में जिन भी समुदायों को ब्राह्मणवाद द्वारा पोषित विषमता का सामना करना पड़ा, वे सभी दलित हैं। दलित विमर्श साहित्य के माध्यम से वर्ण व्यवस्था का विरोध करके विषमता रहित मानव मूल्यों की स्थापना के लिये संघर्ष करता है, ब्राह्मणवादी अथवा मनुवादी प्रतीकों तथा प्रथाओं का निषेध करता है तथा सदियों से पिछड़ी और अछूत मानी जाने वाली जातियों के लिये अवसर, साधन एवं शिक्षा उपलब्ध कराने का समर्थन करता है। दलित विमर्श अपनी विचारधारा निर्माण के लिये डॉ. अम्बेडकर की मान्यताओं को आधार बनाता है। स्वयं डॉ. अम्बेडकर नारायण गुरु, ज्योतिबा फुले व रामास्वामी नायकर से प्रभावित थे। फ्राँसीसी क्रांति के आदर्शों स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का भी उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा था। इन विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने दलित साहित्य के निर्माण की प्रेरणा के संदर्भ में तीन प्रमुख विचार सूत्रों पर बल दिया– 1. स्वाभिमान, स्वावलंबन, स्वउभार, 2. शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष, 3. मानवीय अधिकार प्राप्ति के लिये संघर्ष। दलित साहित्य पर अम्बेडकर के विचारों का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। आत्मशक्ति एवं स्वावलंबन की भावना से भरकर रचनाकारों ने डॉ. अम्बेडकर के प्रतिनिधित्व में, 'दलित मुक्ति आंदोलन' का आरंभ किया।

दलित विमर्श की नींव ज्योतिबा फुले ने अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' से रखी। हालाँकि इसका दायरा डॉ. अम्बेडकर ने विस्तृत किया। 1920 में उन्होंने 'मूक नायक' नामक पत्रिका का आरंभ किया जिसमें वर्ण-व्यवस्था का विरोध तथा दलित वर्गों को प्रबोधन देने का लक्ष्य कथ्य के रूप में चयनित किया गया था। सन् 1927 में डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण-व्यवस्था के विरोध में क्रांतिधर्मी आंदोलन आरंभ किया। यही वह समय था जब दलितों के भीतर जागृति की लहर उठी और उन्होंने रचनात्मकता के माध्यम से

खंड–11

साहित्यिक विषयों से जुड़े निबंध

1 साहित्य की ज़िम्मेदारी है कि वह दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो।

"जब कभी भी बात जंगल, नदी, पहाड़
रोटी, झोपड़ी, पेट, गरीब, देश की होगी
हम यूँ ही दर्ज करते रहेंगे
अपने तीखे प्रतिवाद
हम यूँ ही रचते रहेंगे विद्रोह की भाषा
हम अपनी ज़िद के ना-हद तक बागी हैं
हमारा देश हमारी ज़िद है!"

साहित्यकार सर्जक होने के नाते विशिष्ट होने के बावजूद सबसे पहले सामान्य नागरिक ही होता है, संवेदनशीलता एवं परिवर्तनकारी होना उसका सहज स्वभाव होता है। ऐसे में यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि कोई साहित्यकार दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो और इससे आगे जाकर वह वैकल्पिक रास्तों तक जाने की अंतश्चेतना रचता हो। इसी भावना को एक दलित कवि नामदेव ढसाल वाणी दे रहे हैं–

"मुझे नहीं बसाना है अलग से स्वतंत्र द्वीप
फिर मेरी कविता, तू चलती रह सामान्य ढंग से
आदमी के साथ उसकी उंगली पकड़ कर,
× × × × × ×
सत्य-असत्य के संघर्ष में खो नहीं दिया मैंने खुद को
मेरी भीतरी आवाज़, मेरा सचमुच का रंग,
मेरे सचमुच के शब्द
मैंने जीने को रंगों से नहीं,
संवेदनाओं के कैनवस पर रंगा है।"

दुनिया में दो तरह की शक्तियाँ हैं– सृजन की एवं विध्वंस की। साहित्य सृजन की शक्तियों की एक समर्थ अभिव्यक्ति है। विध्वंस की शक्तियों ने ही इस दुनिया में दलित, शोषित एवं वंचित पैदा किये हैं इसलिये यह स्वाभाविक है कि साहित्य दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो। पर दुर्भाग्य से ऐसा हमेशा नहीं रहा है। कभी अनजाने में, कभी जान-बूझकर, कभी उदासीनता की भावना ने ऐसा होने नहीं दिया है। यदि भारत की बात की जाए तो वैदिक साहित्य एक सर्वकल्याणकारी चेतना से युक्त है, उसमें इसलिये अलग से पक्षधरता दिखलाने की ज़रूरत ही न थी। वाल्मीकि, जो भारत के आदिकवि माने गए हैं, उनका कवित्व एक क्रौंच पक्षी के शोक को देखने के बाद जाग उठा था और उनके मुँह से विषाद के साथ निषाद के लिये शाप भी फूट पड़ा था *"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।"* पर यही संवेदनशील वाल्मीकि शंबूक वध प्रकरण में बेहद सख्त बन गए। निश्चय ही इस तरह के अंतर्विरोधों से दुनिया के हर देश का प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है क्योंकि तब साहित्य पर ईश्वर, राजा एवं सामंतों का यूँ कब्ज़ा था कि उसमें वंचित-दलित-शोषित तत्त्वों के लिये स्थान निकलना

खंड–12

महापुरुषों के व्यक्तित्व से जुड़े निबंध

1 डॉ. अम्बेडकर : एक युगद्रष्टा एवं क्रांतिकारी समाज सुधारक।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के नामांतर के बाद भी दलितों के घर जला दिये गए। परभणी ज़िले के गिरगाँव में दलितों के जलाए गए घर पूरी तरह खाक हो गए थे। दलित बस्ती पूरी तरह जलकर खाक हो गई थी। जले हुए घरों की ओर एक अधेड़ उम्र की महिला देख रही थी। उस महिला ने चश्मे से लेखक की ओर देखा। लेखक कहते हैं– *"माई बहुत नुकसान हुआ है न!"* महिला ने आक्रोश में कहा– *"अरे बेटा जलाने दे, मेरा घर जलाने दे, पैसा जलाने दे, ज्वार जलाने दे; लेकिन मेरे सीने में जो बाबा साहेब का स्वाभिमान रेखांकित है, उसे कोई जला सकेगा क्या? है किसी में हिम्मत? मेरे बाबा साहेब को कोई नहीं जला सकता।" महिला अपने सीने पर हाथ रखकर कह रही थी। लेखक की आँखों में आँसू आ गए, कहा– "माई आपने सच ही कहा है, हमारे बाबा साहेब को कोई नहीं जला सकता.... कोई नहीं.....।"*

(मराठी पुस्तक 'जग बदल घालुनी घाव' या 'दुनिया बदलने को किया वार' से उद्धृत)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर आज भी हर उस प्राण में बसते हैं, जो सामाजिक शोषण की व्यवस्था से दमित है। हर वह वर्ग जिसने सदियों का संताप झेला है, चाहे वे शूद्र हों या नारी, वे बाबा साहेब के स्वाभिमान को हृदय में रेखांकित किये रहते हैं। बाबा साहेब की उपस्थिति आज भी हर क्रांति, हर बदलाव, दमन के विरुद्ध हर आंदोलन के स्वर में ध्वनित होती है।

प्रत्येक राष्ट्र वहाँ निवास करने वाले समूहों के साझे इतिहास, संस्कृति, स्वप्न एवं आकांक्षाओं की ही भौगोलिक एवं राजनीतिक अभिव्यक्ति का एक स्वरूप होता है। इस स्वरूप पर ऐतिहासिक कटुताओं की स्मृति या सामाजिक हितों के टकराव की छाया आधुनिक राष्ट्रों के लिये एक आम चुनौती की तरह रही है। इन चुनौतियों के समक्ष कई राष्ट्र बिखर गए तो कुछ राष्ट्रों ने इन चुनौतियों को सुलझाने की बजाय उनका दमन करने का निर्णय लिया। दरअसल, बेहतर तो यही माना जाता है कि इतिहास में लम्बे समय से चली आ रही कुरीतियों एवं उनके कारण पैदा हुए सामाजिक विभाजन जैसी समस्याओं को सुलझाने हेतु नेतृत्व का उदय समाज के भीतर से ही होना चाहिये। यह नेतृत्व ही अपनी दूरदृष्टि, समझदारी और साहस से यह तय करे कि एक समतामूलक एवं सशक्त समाज का निर्माण समस्याओं को निर्ममतापूर्वक कुचलकर अथवा उन्हें दरकिनार करके नहीं वरन् उनका विश्लेषण एवं अध्ययन करके लोकहित एवं लोकसम्मति के आधार पर हो। डॉ. भीमराव अम्बेडकर को आधुनिक भारत में उभरे एक ऐसे ही नेतृत्व के प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

महार (दलित) जाति में जन्मे अम्बेडकर को अपने शुरुआती जीवन में ही भारत में जाति व्यवस्था के कारण होने वाले भेदभाव का कटु अनुभव हो गया था। अपनी मेहनत एवं लगन से बम्बई विश्वविद्यालय एवं तत्पश्चात् अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करके जब वे भारत वापस लौटे तो रूढ़ियों में जकड़े भारतीय समाज एवं सदियों से उन रूढ़ियों का भार ढो रहे दलित समाज के उत्थान के लिये वे कृतसंकल्प थे। आने वाले वर्षों में जाति-उन्मूलन के आंदोलन को एक नया आयाम देकर एवं आज़ादी के बाद भारतीय संविधान के रूप में भारतीय जनमानस के लिये एक प्रगतिशील और उदार संविधान की नींव रखकर, उन्होंने स्वयं को राष्ट्र निर्माताओं की प्रथम कोटि में पहुँचा दिया।

एक समाज सुधारक के रूप में अम्बेडकर को जहाँ एक ओर कबीर और ज्योतिबा फुले की समाज सुधार की परंपरा में देखा जाता है, वहीं दूसरी ओर छुआछूत के उन्मूलन के लिये उनके द्वारा किये गए संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयास उन्हें एक क्रांतिकारी कलेवर भी प्रदान करते हैं। अम्बेडकर के इन स्वरूपों को समझने हेतु उनके कार्यों का एक लघु चित्रण सहायक होगा। अम्बेडकर

निबंध के लिये उपयोगी उद्धरण

खंड-क : विषय आधारित उद्धरण

राष्ट्रभाषा/हिंदी भाषा/भाषा

- *निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।*
  बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
  विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
  सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।।
  –भारतेंदु हरिश्चंद्र
- *संसकिरत है कूपजल, भाखा बहता नीर।* *–कबीर*
- *का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।* *–तुलसीदास*
- *अपनी भाषा के बिना, राष्ट्र न बनता राष्ट्र।*
  बसे वहाँ महाराष्ट्र या, रहे वहाँ सौराष्ट्र।। *–गोपालदास 'नीरज'*
- *समस्त भारतीय भाषाओं के लिये यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।*
  –(जस्टिस) कृष्णस्वामी अय्यर
- *विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है।* *–वाल्टर चेनिंग*
- *हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।*
  –राजेंद्र प्रसाद
- *राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है।* *–महात्मा गांधी*
- *हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।* *–कमलापति त्रिपाठी*
- *हिंदी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।* *–जवाहरलाल नेहरू*
- *यदि तुम एक व्यक्ति से उस भाषा में बात करते हो जिसे वह समझता है तो ऐसी भाषा उसके दिमाग में प्रवेश करती है। यदि तुम उस व्यक्ति से उसी की भाषा में बात करते हो तो वह उसके हृदय में प्रवेश करती है।* *–नेल्सन मंडेला*
- *प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी अन्य किसी चीज़ से संभव नहीं।*
  –सुभाष चंद्र बोस
- *हिंदी आम बोलचाल की 'महाभाषा' है।* *–जॉर्ज ग्रियर्सन*
- *आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिये। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिये।*
  –महावीर प्रसाद द्विवेदी
- *जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख*
  और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख
  –भवानी प्रसाद मिश्र

कला/सिनेमा

- *सिनेमा की खास विशेषता मानव मन की अंतरंगता को पकड़ने और संवाद करने की अपनी क्षमता है।* *–सत्यजीत रे*
- *कला एक प्रकार का नशा है जिससे जीवन की कठोरताओं से विश्राम मिलता है।* *–सिग्मंड फ्रॉयड*
- *तस्वीर एक कविता है जिसके शब्द नहीं।* *–होरेस*
- *एक अच्छा चित्र लंबे भाषण से बेहतर होता है।*
  –नेपोलियन बोनापार्ट
- *कला या तो साहित्यिक चोरी है या फिर एक क्रांति।*
  –पॉल गौगुइन
- *जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला आता है।* *–रामचंद्र शुक्ल*

बाज़ार/अर्थव्यवस्था/पूंजीवाद

- *ये नए युग के सौदागर हैं,*
  बेचना और खरीदना नहीं
  केवल छीनना जानते हैं,
  ये कभी सामने नहीं आते
  रहते हैं कहीं दूर समंदर के इस या उस पार।
  –मदन कश्यप

खंड-घ : अंग्रेज़ी उद्धरण

Corruption

- *Righteousness is the foundation stone of peace and good governance.* – Confucius
- *Corruption is like a ball of snow. Once it sets rolling, it must increase.* – Charles Colton
- *Power tends to corrupt, and absolute power corrupts absolutely.* – Lord Acton
- *Power does not corrupt. Fear corrupts, perhaps the fear of a loss of power.* – John Steinbeck

Peace

- *When the power of love overcomes the love of power, the world will know peace.* – William Gladstone
- *Peace and Justice are two sides of the same coin.* – Eisenhower

Democracy

- *I do not agree with what you have to say, but I'll defend to the death your right to say it.* – Voltaire
- *I understand democracy as something that gives the weak the same chance as the strong.* – Mahatma Gandhi
- *Pillars of democracy : 3D i.e. Debate, Discuss and Dialogue.*
- *Revolutions are the locomotives of history.* – Karl Marx
- *From each according to his abilities, to each according to his needs.* – Karl Marx
- *History repeats itself, first as tragedy, second as a farce.* – Karl Marx

Science v/s Religion

- *All thinking men are atheists.* – Ernest Hemingway
- *Our scientific power has outrun our spiritual power. We have guided missiles and misguided men.* – Martin Luther King
- *Science without Religion is lame and Religion without Science is blind.* – Einstein

Education

- *Education is the most powerful weapon which you can use to change the world.* – Nelson Mandela
- *Literacy is a bridge from misery to hope.* – Kofi Annan
- *Live as if you were to die tomorrow. Learn as if you were to live forever.* – Mahatma Gandhi
- *Education is the manifestation of perfection already in man.* – Swami Vivekananda
- *An investment in knowledge pays the best interest.* – Benjamin Franklin
- *Success is walking from failure to failure with no loss of enthusiasm.* – Winston Churchill

Gender Equality / Women

- *A gender-equal society would be one where the word 'gender' does not exist: where everyone can be themselves.* – Gloria Steinem
- *I measure the progress of a community by the degree of progress which women have achieved.* – B. R. Ambedkar
- *Women are the largest untapped reservoir of talent in the world* – Hillary Clinton
- *You educate a man, you educate a man. You educate a woman, you educate a generation* – Brigham Young
- *No one cares how much you know, until they know how much you care.* – Theodore Roosevelt
- *Whatever is begun in anger, ends in shame.* – Benjamin Franklin
- *If you want something said, ask a man; if you want something done, ask a woman.* – Margaret Thatcher

Poverty

- *Poverty is like a punishment for a crime you didn't commit.* – Eli Khamarov
- *Best way to help poor is not to be one of them.* – Carnegie Mellon
- *Poverty is the worst form of violence.* – Mahatma Gandhi

घर बैठे IAS/PCS की संपूर्ण तैयारी करने के लिये आपका स्वागत है

Drishti Learning App

पर

GET IT ON Google Play

अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

ऐप की विशेषताएँ

- टीम दृष्टि द्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएँ एक ही मंच पर।
- ऑनलाइन, पेनड्राइव मोड में कक्षाएँ उपलब्ध।
- प्रिलिम्स और मेन्स की टेस्ट सीरीज़ भी ऐप के माध्यम से उपलब्ध।
- सभी पुस्तकें, मैगजीन, डिस्टेंस लर्निंग प्रोग्राम के नोट्स देखने व मंगवाने की सुविधा।

ऑनलाइन कोर्स की विशेषताएँ

- घर बैठे देश के सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों से पढ़ने की सुविधा।
- अब दिल्ली या किसी बड़े शहर जाकर पढ़ने की मजबूरी नहीं।
- IAS और PCS के कोर्स उपलब्ध।
- ऑनलाइन कोर्स करने के बाद, क्लासरूम कोर्स में प्रवेश लेने पर शुल्क में विशेष छूट।
- हर क्लास अपनी सुविधा से 3 बार देखने की सुविधा।
- उत्तर लिखकर चेक कराने तथा संदेह-समाधान की व्यवस्था भी शीघ्र उपलब्ध।
- कई विषयों के कोर्स ऑनलाइन और पेनड्राइव मोड में भी उपलब्ध।

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली शाखा) का पता
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
8448485519, 87501 87501, 011-47532596

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज शाखा) का पता
ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि आई.ए.एस. (राजस्थान शाखा) का पता
प्लॉट नंबर-45 व 45-A, हर्ष टावर-2, मेन टोंक रोड़, वसुंधरा कॉलोनी, जयपुर राजस्थान-302018
8448485518, 8750187501, 8929439702

लेखक परिचय

डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

पेशे से अध्यापक व लेखक डॉ. विकास दिव्यकीर्ति की गहरी रुचि विविध विषयों को पढ़ने और अनुसंधान करने में रही है। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में बी.ए. (ऑनर्स) किया तथा उसके बाद विषय-परिवर्तन करके हिंदी साहित्य में एम.ए, एम.फिल. तथा पी.एच.डी. की पढ़ाई की। बाद में उन्होंने समाजशास्त्र तथा जन-संचार विषयों में एम.ए.; विधि विषय में स्नातक (एल.एल.बी.) तथा आई.आई.टी. दिल्ली से प्रबंधन में सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम किया। वे हिंदी साहित्य से यू.जी.सी. नेट/जे.आर.एफ. तथा समाजशास्त्र से नेट की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर चुके हैं और उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय तथा भारतीय विद्या भवन से अंग्रेज़ी-हिंदी अनुवाद में पी.जी. डिप्लोमा भी किया है। दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, सिनेमा अध्ययन, सामाजिक मुद्दे और राजनीति विज्ञान (विशेषत: भारतीय संविधान) उनकी रुचि के अन्य विषय हैं।

डॉ. विकास ने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य से की। उसके बाद उन्होंने 1996 की सिविल सेवा परीक्षा में अपने पहले प्रयास में सफलता हासिल की और लगभग एक वर्ष तक भारत सरकार के गृह मंत्रालय में कार्य किया। उसके बाद वे अपने पद से त्यागपत्र देकर पुन: शिक्षण के क्षेत्र में उतरे और 'दृष्टि संस्थान' की स्थापना की। आजकल वे अध्यापन-कार्य के साथ-साथ समसामयिक मुद्दों की मासिक पत्रिका 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' के लिये प्रधान संपादक की भूमिका भी निभा रहे हैं।

वर्तमान में डॉ. विकास कुछ पुस्तकों के लेखन व संपादन की प्रक्रिया में जुटे हैं। उनकी भावी योजनाओं में शिक्षा तथा मीडिया क्षेत्रों से जुड़े कुछ सामाजिक उद्यम शामिल हैं।

निशान्त जैन

यूपीएससी की वर्ष 2014 की सिविल सेवा परीक्षा में 13वीं रैंक हासिल करने वाले निशान्त जैन, हिन्दी/भारतीय भाषाओं के माध्यम के टॉपर हैं। मुख्य परीक्षा में देश के तीसरे सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले निशान्त ने निबंध और वैकल्पिक विषय (हिंदी साहित्य) के प्रश्नपत्र में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए थे। उत्तर प्रदेश के मेरठ में साधारण पृष्ठभूमि में पले-बढ़े, निशान्त ने UPSC की सिविल सेवा परीक्षा के अपने दूसरे प्रयास में सफलता प्राप्त की।

इतिहास, राजनीति विज्ञान और अंग्रेज़ी में ग्रेजुएशन और हिंदी साहित्य में पोस्ट-ग्रेजुएशन के बाद यूजीसी की नेट-जे.आर.एफ. परीक्षा उत्तीर्ण की। कॉलिज के दिनों में डिबेट, काव्यपाठ, निबंध लेखन और क्विज़ प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते रहे निशांत ने दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.फिल. की उपाधि प्राप्त की है। सिविल सेवा में चयनित होने से पहले वह लोक सभा सचिवालय के राजभाषा प्रभाग में भी दो साल सेवा कर चुके हैं।

LBSNAA में IAS की दो वर्ष की ट्रेनिंग के उपरांत उन्हें JNU से पब्लिक मैनेजमेंट में पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री प्राप्त हुई।

कविताएँ लिखने और युवाओं से संवाद स्थापित करने में रुचि रखने वाले निशान्त ने सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए 'मुझे बनना है UPSC टॉपर' के नाम से एक किताब भी लिखी है, जिसका इंग्लिश और मराठी में अनुवाद भी लोकप्रिय है। यूट्यूब व सोशल मीडिया पर उनके लेक्चर/वीडियो काफी लोकप्रिय हुए हैं।

वह भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) के 2015 बैच के अधिकारी हैं। उनका ब्लॉग है- nishantjainias.blogspot.in

641, 1st Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

ISBN 978-81-950940-6-6
9 788195 094066
मूल्य : ₹ 380